अक्तूबर–दिसंबर 2016
ISSN : 2320-7736

सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

अंक–99

Digital India
Power To Empower

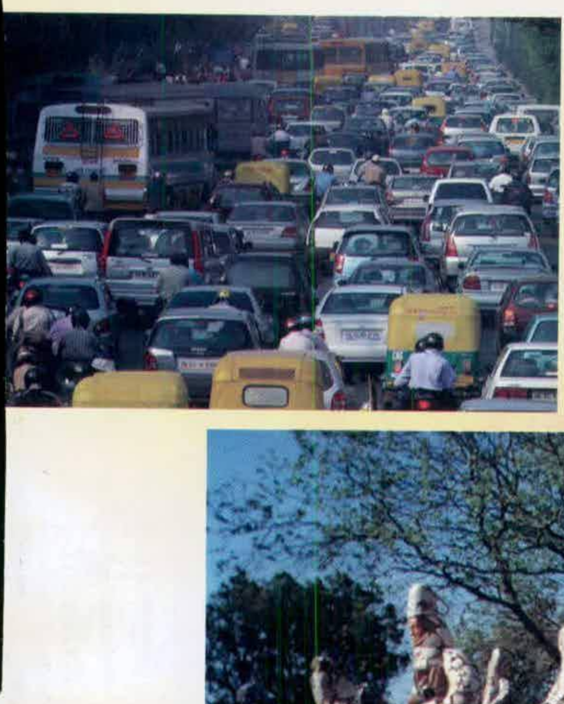
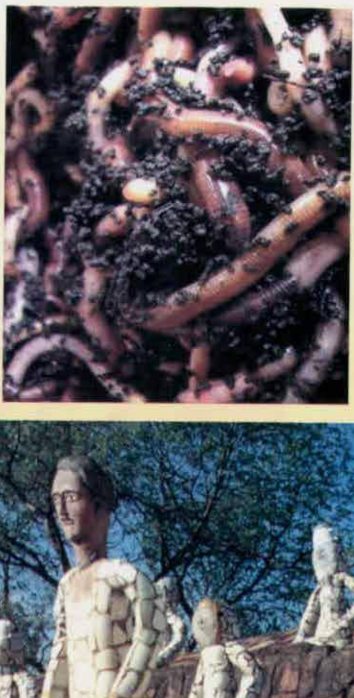
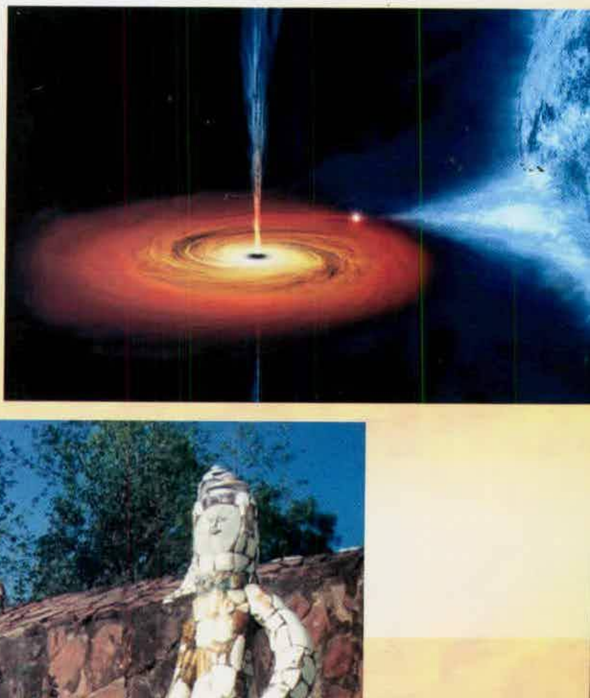
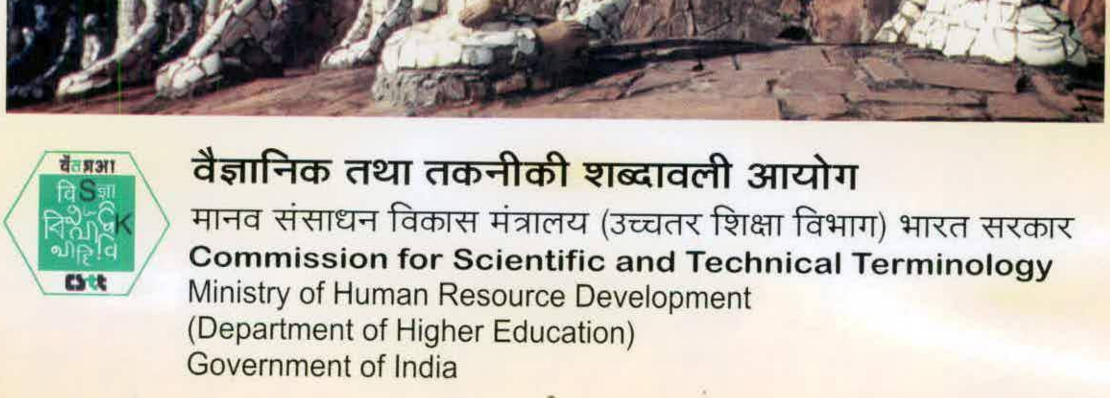

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

ISSN 2320-7736 (PRINT)

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक - 99
(अक्टूबर–दिसंबर, 2016)

Digital India
Power To Empower

सत्यमेव जयते

स्वच्छ भारत

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

अध्यक्ष की ओर से....

आयोग की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका का अंक 99 पाठकों के सामने प्रस्तुत करते समय हर्ष हो रहा है। "विज्ञान गरिमा सिंधु" के माध्यम से शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रचार–प्रसार अनवरत रूप से किया जा रहा है साथ ही हिंदी माध्यम से वैज्ञानिक जानकारी, सूचना पाठकों तक संप्रेषित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया जा रहा है।

प्रस्तुत अंक में रसायन, स्वास्थ्य विज्ञान, भौतिकी एवं कृषिविज्ञान आदि विषयों से संबंधित ज्ञानवर्धक तथा शोधपरक लेख सम्मिलित किए गए हैं। आयोग भारतीय भाषाओं के माध्यम से ज्ञान–विज्ञान के श्रेष्ठतम साहित्य छात्र वर्ग, अनुसंधानकर्ताओं और सामान्य प्रबुद्ध वर्ग के लिए निरन्तर प्रकाशित कर रहा है, जैसे– विभिन्न वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों की शब्दावली, परिभाषा–कोशों का निर्माण, विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों, संदर्भ–ग्रंथों और संपूरक साहित्य का निर्माण, शब्दावली कार्यशालाओं का आयोजन, इत्यादि।

प्रस्तुत अंक में पर्यावरण संरक्षण में हरित रसायन (Green Chemistry) विषय पर लेखक द्वारा ज्ञानोपयोगी जानकारी बड़े ही सरल शब्दों में प्रस्तुत की है। इसी क्रम से बढ़ते हुए प्रदूषण का हमारे पर्यावरण पर प्रभाव विषय पर लेख पाठकों के लिए उपयोगी होगा। मृदास्वास्थ्य, मृदा उर्वरता एवं कृषि विज्ञान से संबंधित लेख भी कृषि वैज्ञानिकों एवं छात्रों के लिए निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होंगे। पत्रिका में सम्मिलित किए गए अन्य लेखों द्वारा भी शोध वैज्ञानिकों एवं छात्र वृन्दों के ज्ञान में वृद्धि होगी तथा इन क्षेत्रों में शोध को प्रोत्साहन मिलेगा।

'विज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका के संपादन के लिए विद्वान सदस्यों का योगदान सराहनीय रहा है। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। जिन विद्वानों ने इस पत्रिका के लिए अपने बहुमूल्य अनुभवों को लिपिबद्ध करके लेख के रूप में योगदान दिया है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अंत में **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** के संपादक डॉ. अशोक सेलवटकर आयोग में तकनीकी विषयों की शब्दावलियाँ एवं परिभाषा कोश तथा पाठमालाओं के निर्माण में निरंतर व्यस्त होने के साथ–साथ पत्रिका का संपादन भी निष्ठापूर्वक कर रहे हैं जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है।

(प्रोफेसर अवनीश कुमार)
प्रधान संपादक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादकीय.........

विज्ञान गरिमा सिंधु का 99वां अंक पाठको को समर्पित है। इस अंक में अनेक ज्ञानवर्धक, रोचक लेख हमारे सुधी विज्ञान–लेखकों ने प्रस्तुत किए है। हर्ष की बात है कि पत्रिका विज्ञान गरिमा सिंधु के प्रकाशन के एक लंबी अवधि के दौरान अनेक सुविख्यान विज्ञान लेखक हमसे जुड़े हैं और उनकी विद्वत्ता एवं ज्ञान पूर्ण लेखों से हमारे पाठक लाभान्वित होते रहे हैं। इन लेखकों ने लेखों को बड़ी रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। लेख लिखते समय हर संभव प्रयत्न होता है कि तकनीकी शब्दावली सरल हो तथा लेख बोधप्रद हो। इस प्रकार से यह विज्ञान के प्रसार को परोक्ष रूप से मदत कर रहे है।

प्रस्तुत अंक में कृषि विज्ञान के विविध आयामों से संबंधित लेख शामिल हैं। मृदा स्वास्थ्य संबंधी लेख, खेती में जैव प्रोद्योगिकी', मृदा उर्वरता में वर्मी कंपोस्ट का योगदान, केंचुआ स्त्राव (वर्मी वॉश), अनुपयोगी फलों व सब्जियों से लाभकारी उत्पादों की प्राप्ति। अकाष्ठ वन–उपज/उत्पाद आदि लेख कृषि के क्षेत्र में हुई प्रगति के दयोतक हैं। पत्रिका में प्रस्तुत जानकारी कृषि के छात्रों के दे साथ सामान्य पाठकों के लिए भी सरल व पठनीय है।

जीव–विज्ञान के क्षेत्र में 'पृष्ठवंशियों के अधिचर्म में विभिन्न प्रकार की ग्रंथियां' ज्ञानवर्धक लेख हैं। भौतिकी के क्षेत्र में 'ब्लैक होल' पर ज्ञानवर्धक सामग्री डॉ. विजय कुमार पांडेय ने प्रस्तुत की है। डॉ. दीपक कोहली ने विज्ञान समाचार संबंधी हमारे साथ समाचारिकी के अंतर्गत ज्ञानविज्ञान के बढ़ते हुए कदमों, नए अविष्कारों व नवीन संभावनाओं का संकेत दिया है। इसी शृंखला में अन्य लेख भी ज्ञानवर्धक व विविध जानकारी से परिपूर्ण है। लेखकों ने प्रस्तुत लेखों में बड़ी ही करिने से लेखनी चलाई है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत पत्रिका के लेख पाठकों को उपादेय और उपयोगी लगेगें ऐसा विश्वास है। पाठकों से अनुरोध है कि पत्रिका के लेखो के संबंध के अपने विचार प्रेषित करने के साथ–साथ हमें विज्ञान संबंधी लेख भी भेजने की कृपा करें।

–हस्ता–
(डॉ. अशोक सेलवटकर)
संपादक विज्ञान गरिमा सिंधु

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध–लेख, तकनीकी निबंध, शब्द–संग्रह, शब्दावली–चर्चा, विज्ञान–कथाएं, विज्ञान–समाचार, पुस्तक–समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख के आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत–श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट–लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यून्तम 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपये है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजे:

    डॉ० अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, "विज्ञान गरिमा सिंधु"
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दवली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail : vgs.cstt@gmail.com द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

पत्रिका का शुल्कः	भारतीय मुद्रा	विदेशी मद्रा	
सामान्य ग्राहकों/सस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइटः **www.cstt.nic.in**
कापीराइट © 2016
प्रकाशकः
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली – 110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पताः
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110066
दूरभाष– (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थानः
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054
E-mail: vgs.cstt@gmail.com

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक 99, अक्तूबर–दिसंबर 2016 (ISSN : 2320-7736)

प्रधान संपादक
प्रोफेसर अवनीश कुमार
अध्यक्ष

संपादक
डॉ. अशोक सेलवटकर

प्रकाशन–मुद्रण व्यवस्था
डॉ. पी. एन. शुक्ल
सहायक निदेशक

बिक्री एवं वितरण
इ. मोहनलाल मीणा
सहायक निदेशक

संपर्क सूत्र
संपादक
"विज्ञान गरिमा सिंधु"
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7
आर. के. पुरम,
नई दिल्ली-110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1.	खेत हरा, स्वस्थ धरा : जन समृद्धि का आधार	डॉ. उदय प्रतापशाही, डॉ. बी. पी. ध्यानी एवं दीपक सिसोदिया	01
2.	पर्यावरण संरक्षण में हरित रसायन विज्ञान	डॉ. दिनेश मणि	05
3.	मृदा उर्वरता के लिए वर्मी कंपोस्ट	श्री विजय चितौरी	10
4.	लाख की खेती में जैव प्रौद्योगिकी : एक नया विकल्प	डॉ. विनय कुमार मिश्रा, डॉ. तमिलारसी एवं डॉ. के. के. शर्मा	15
5.	केंचुआ स्राव : उपयोगी जैविक उर्वरक	डॉ. श्री जगनारायण	18
6.	'जीका' विषाणु (विज्ञान कविता)	श्री टी. डी. जोशी	21
7.	अकाष्ठ वन उपज/उत्पाद : एक भारतीय परिप्रेक्ष्य	डॉ. नवीन कुमार बोहरा	23
8.	मछली जो मछली नही है	डॉ. सी. पी. सिंह	30
9.	सूखे ओले और अनावश्यक बरसात से मुक्ति	प्रो. बी. आर. मौर्य, श्री जगनारायण	31
10.	बढते प्रदूषण का पर्यावरण पर प्रभाव	डॉ. दीपक कोहली	37
11.	पृष्ठवंशियों के अधिचर्म में विभिन्न प्रकार की ग्रंथिया	डॉ. सी. पी. सिंह	42
12.	अनुपयोगी फलों, सब्जियों और उनके अपशिष्टों के लाभकारी उत्पाद	डॉ. जगनारायण	43
13.	धूसर नेवला : चंडीगढ का राजकीय पशु	डॉ. परशुराम शुक्ल	48
14.	ब्रह्मांड पर 'ब्लैक होल' (कृष्ण विवर) की काली छाया	डॉ. विजय कुमार पांडेय	56
15.	विज्ञान समाचार	डॉ. दीपक कोहली	61
16.	चंडीगढ स्थित रॉक गॉर्डनः नेकचंद का अदवितीय कारनामा	सीताराम गुप्ता	72
☐	लेखक परिचय		76
☐	आयोग के प्रकाशन		77
	ग्राहक फार्म		90
☐	बिक्री संबंधी नियम		92
☐	प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रो की सूची		93

1

खेत हरा स्वस्थधराः जन समृद्धि का आधार

डॉ. उदय प्रताप शाही , डॉ. बी. पी. ध्यानी एवं दीपक सिसोदिया

एक अनुमान के अनुसार सन् 2050 तक विश्व की जनसंख्या 900 करोड़ तक पहुँच जाएगी जो 2009 में 700 करोड़ थी। हमारे देश में बढ़ते शहरीकरण एवं जनसंख्या के कारण प्रति. व्यक्ति कृषि–योग्य जमीन की उपलब्धता में लगातार कमी आ रही है। जहाँ भारत में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि जो 1965–66 में 0.29 हेक्टेयर थी 2009–10 में 0.15 हेक्टेयर रह गई है, जबकि हमारी अन्न की मांग लगातार बढ़ती जा रही है। वर्ष 1960 में 1 हेक्टेयर खेत से 2 लोगों के लिए खाद्य का उत्पादन प्राप्त होता था परंतु 2050 तक उतने ही क्षेत्र से 6 लोगों हेतु उत्पादन की आवश्यकता होगी। अतः घटते क्षेत्रफल से लगातार उत्पादकता में वृद्धि एक बड़ी चुनौती है जिसे बेहतर प्रबंधन से हम प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं। आज देश में खाद्य सुरक्षा से हमें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन खाद्य पोषण सुरक्षा बड़ा चुनौतीपूर्ण प्रश्न है। पोषण सुरक्षा मृदा स्वास्थ्य पर भी निर्भर करती है, यदि मृदा स्वास्थ्य बेहतर है तो उसके उत्पादों की पोषकता भी बेहतर होगी। घोषित 17 आवश्यक पोषक तत्वों में अधिकांश का मानव पोषण के लिए महत्वपूर्ण योगदान है, ये पोषक तत्व उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित करते है। यदि इन पोषक तत्वों की मृदा में पर्याप्त मात्रा हो तो निस्संदेह उत्पाद की पोषकता भी बेहतर होगी, परंतु राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित लेखों में विभिन्न आंकड़ों से अवगत होता है कि हमारी मृदाएँ विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों में न्यून हैं व इस स्तर का उत्पाद गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव स्वाभाविक है। भारत वर्ष की 89 प्रतिशत मृदाएं नाइट्रोजन में, 80 प्रतिशत फॉस्फोरस में, 50 प्रतिशत पोटाश में, 41 प्रतिशित गंधक में, 48 प्रतिशत जस्ता, 33 प्रतिशत बोरॉन, 12 प्रतिशत लोहा में न्यून हैं। इनमें से नाइट्रोजन, फास्फोरस, जस्ता एवं लोहे का मानव पोषण में विशेष स्थान है। इस कमी के कारण चिकित्सक जस्ता एवं लोहे को मानव शरीर हेतु पूरक के रूप में संस्तुत कर रहे हैं। कृषि में मृदा स्वास्थ्य का सीधा संबंध मृदा उत्पादकता से है। स्वस्थ मृदा से ही पर्याप्त गुणवत्ता युक्त फसलोत्पादन होता है। किंतु वर्तमान परिपेक्ष में मृदा स्वास्थ्य का महत्व उत्पादकता से अधिक है जो मृदा को संपूर्ण पर्यावरण से जोड़ती है। जैसा कि हम जानते हैं

एक स्वस्थ मृदा जिसमे सभी आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों साथ ही साथ जो हानिकारक तत्व व अन्य प्रदूषक से मुक्त हों उस मृदा से ही गुणवत्ता युक्त फसल प्राप्त की जा सकती है, जिस पर मानव–पशु–पक्षी सबका स्वास्थ्य निर्भर करता है।

मृदा स्वास्थ्य तथा मृदा गुणवत्ता शब्दों का प्रयोग सामान्यतः पर्यायवाची के रूप में किया जाता है परंतु इनमे कुछ अंतर भी है। मृदा गुणवत्ता मानव स्वास्थ्य, पशु स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए महत्वपूर्ण है। मृदा स्वास्थ्य कई लाक्षणिक गुणों से परिलक्षित होता है जिसमे जैवांश, लवणता, संरचना, पोषक तत्व की उपलब्धता, पी. एच. जलधारण क्षमता तथा अपरदन स्तर आदि सम्मिलित है। सामूहिक रूप से ये गुण मृदा को कई महत्वपूर्ण कार्य करने हेतु सक्षम बनाते हैं, जैसे गुणवत्तायुक्त फसलोत्पादन, वर्षा एवं सिंचाई जल के वितरण को नियंत्रित करना, जल को छान कर शुद्ध करना एवं अवशिष्ट रसायनों के हानिकारक प्रभाव को कम करना आदि।

उत्तम मृदा स्वास्थ्य हेतु महत्वपूर्ण सुझावः यदि आप की मृदाओं का पोषक स्तर सामान्य से अधिक है तो उसमें संस्तुत मात्रा मे पोषक तत्वों का अनुप्रयोग आवश्यक है। मृदा उर्वरता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि जमीन से पोषक तत्वों की जितनी भी मात्रा अवशोषित हो रही है उतनी ही मात्रा में बाहर से खादों के रूप मे पोषक तत्वों का अनुप्रयोग किया जाए।

मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने हेतु निम्न 7 बिंदु अति महत्वपूर्ण हैं:–

1. मृदा स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता
2. जैवांश का उचित स्तर बनाए रखना
3. मृदा अपरदन को न्यूनतम करना
4. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
5. एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन
6. फसल प्रणाली का विविधीकरण
7. मृदा परीक्षण व मृदा स्वास्थ्य कार्ड

1. मृदा स्वास्थ्य के प्रति जागरूकताः मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने हेतु जन–सामान्य का इसके प्रति जागरूक होना सबसे महत्वपूर्ण कदम है। इस तरफ भारत सरकार द्वारा विशेष पहल कर 5 दिसंबर 2015 को बड़े पैमाने पर विश्व मृदा दिवस मनाया गया। सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा पूरे देश मे मृदा स्वास्थ्य कार्ड वितरण व उसके प्रति जागरूकता अभियान चलाया गया। इसके अलावा कई सार्वजनिक मंचों से व रेडियो द्वारा मन की बात में भी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने किसान भाइयों से आग्रह किया कि वे फसल अवशेषों को खेत में न जलाएं व जल एवं पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग करें। फसल अवशेषों के प्रयोग द्वारा पोषक तत्वों की उपलब्धता और भूमि के प्रमुख गुणों में सुधार किया जा सकता है। फसल अवशेषों के प्रयोग से जल्द फायदा लेने के लिए यह आवश्यक है कि कार्बन एवं नाइट्रोजन का अनुपात कम किया जाए, जिससे कि नाइट्रोजन कार्बनिक रूप में परिवर्तित न हो पाए। एक आकलन के अनुसार 273 मि. टन फसल अवशेषों से लगभग 7.16 मि. टन पोषक तत्व (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस,

पोटाश) उपलब्ध हो सकते हैं। कृषि व्यवसाय से न जुड़े हुए लोगों को भी यह सुनिश्चित करना होगा कि हम कोई भी ऐसा कार्य न करें जिससे मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर हो। खराब बैटरी, पेंट, तेल, प्रिंटर का टोनर आदि को निस्तारित करते समय यह ध्यान में रखें कि इनमें हानिकारक भारी तत्व मौजूद होते हैं जो मृदा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं जिससे परोक्ष व अपरोक्ष रूप से हम सभी का स्वास्थ्य निर्भर होता है।

2. **जैवांश पदार्थ का उचित स्तरः** मृदा में पर्याप्त जैवांश पदार्थ एक स्वस्थ मृदा का सूचक होता है। यह मृदा कणों को बांधे रखने, स्थायित्व प्रदान करने, मृदा में जलवायु एवं पोषक तत्वों का संग्रह, व उपलब्धता बनाए रखने, मृदा जीवों को संतुलित बनाए रखने एवं मृदा संपीडन रोकने में सहायक होता है। कार्बनिक खादों जिसमे हरी खाद, गोबर की खाद, केंचुए की खाद व अन्य कंपोस्ट का प्रयोग करके किसान भाई मृदा मे जैवांश का उचित स्तर बनाए रख सकते हैं। कर्षण क्रिया से जैवांश का विघटन बढ़ जाता है जिससे इसकी क्षति तीव्र गति से होने लगती है। अतः कर्षण क्रियाएँ न्यूनतम होनी चाहिए। फसल अवशेषों को खेत में जलाना एक आम प्रथा हो गई है, जिसे रोकने की आवश्यकता है। फसल अवशेषों को कदापि नहीं जलाना चाहिए बल्कि मृदा में मिश्रित कर दें या कंपोस्ट तैयार कर पुनः मृदा में मिला दें।

3. **मृदा अपरदन को न्यूनतम करनाः** मृदा की ऊपरी परत के विस्थापन को मृदा अपरदन कहा जाता है। मृदा के ऊपरी स्तर में जैविक सक्रियता का सर्वोच्च स्तर पाया जाता है जो पौधों की वृद्धि एवं मृदा स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। देश के कुल भैगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 36.5 प्रतिशत क्षेत्र समस्याग्रस्त श्रेणी में आता है। मृदा अपरदन को रोकने के लिए मृदा को वनस्पति से आच्छादित करना, नालियों की दिशा में परिवर्तन, कर्षण क्रियाओं का समायोजन, जैवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ाना, पलवार का अनुप्रयोग एवं बहुवर्षीय फसलें उगाना आदि महत्वपूर्ण कार्य हैं।

4. **एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधनः** गुणवत्तायुक्त उच्च फसलोत्पादन हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की समुचित आपूर्ति अनिवार्य है। उर्वरक पोषक एवं मृदा की पोषक तत्व आपूर्ति क्षमता के अनुसार करना चाहिए। अत्यधिक मात्रा में यूरिया का प्रयोग करना न सिर्फ आर्थिक दृष्टिकोण से बल्कि पर्यावरण के लिए भी हानिकारक होता है। यूरिया के अधिक प्रयोग से भूगर्भ जल में नाइट्रेट का स्तर बढ़ जाता है, पेय जल में नाइट्रेट की अत्यधिक मात्रा कई बीमारियाँ पैदा करती हैं।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में पोषक तत्वों के उपलब्ध सभी स्रोत जैसे उर्वरक, जैविक खाद, हरी खाद, जैव उर्वरक व हानिरहित औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ का विवेकपूर्ण समायोजन कर पोषक तत्व प्रबंधन किया जाता है जिससे उचित उत्पादन के साथ मृदा स्वास्थ्य भी बना रहता है। यह पद्धति उन क्षेत्रों के लिए विशेष लाभदायक है जहां गहन खेती की जाती है क्योंकि यह टिकाऊ उच्च उत्पादन के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायक है।

5. **समेकित नाशीजीव प्रबंधकः** नाशीजीव नियंत्रण हेतु रसायन का अधिक प्रयोग मानव, पशु व मृदा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। अतः यह आवश्यक है कि समेकित नाशीजीव प्रबंधन किया जाए, जिसमें रसायन–रहित विधियों (कर्षण, यांत्रिक) कीट संग्राहक तथा जैव कर्मकों का उपयोग कर नाशीजीव रसायनों का प्रयोग कम किया जाता है। यह पद्धति आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होने के साथ मृदा स्वास्थ्य, मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने की प्रभावी विधि है।

6. **फसल प्रणाणी का विविधीकरणः** फसल वक्र से नशीजीव नियंत्रण एवं पोषक तत्वों की सुलब्धता में सुधार होता है, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश अपेक्षित विविधता प्रदान करता है तथा मृदा में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण भी करता है। गहरी व उथली जड़ वाली फसल उगाने से पोषक तत्वों का समुचित उपयोग होता है।

7. **मृदा स्वास्थ्य कार्डः** मृदा स्वास्थ्य कार्ड किसानों द्वारा अपनी भूमि के मृदा स्वास्थ्य का अभिलेख रखने का एक तरीका है। इसमें उन महत्वपूर्ण मृदा गुणों की सूचना रहती है जो मृदा स्वास्थ्य के सूचक होते हैं, जैसे भौतिक दशा, पी एच, जैवांश की मात्रा, सुलभ पोषक तत्व की मात्रा, आदि। मृदा स्वास्थ्य की वर्तमान स्तर की सूचना के अतिरिक्त यह कार्ड कालांतर में मृदा स्वास्थ्य में हो रहे परिवर्तनों के पर्यवेक्षण में सहायक होता है जिससे मृदा स्वास्थ्य सुधार हेतु स्थान–विशिष्ट एवं कृषि पद्धति विशिष्ट कार्यवाही समय पर की जा सके।

मृदा स्वास्थ्य देखभाल के लिए वैज्ञानिक उपायों की पहल के मामलों में गुजरात मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करने वाला प्रथम राज्य रहा जिसका प्रदेश के कृषि विकास दर में उत्साही परिणाम प्राप्त हुआ।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में "स्वस्थ धरा–खेत हरा" नारे के साथ राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले के सूरत गढ़ कस्बे में राष्ट्रीय मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का शुभारंभ किया। इस महत्वपूर्ण योजना के तहत अगले तीन वर्षों में 14 करोड़ मृदा स्वास्थ्य कार्ड किसानों को जारी किए जाएंगे। सरकार के इस कदम से किसानों को मृदा स्वास्थ्य को जानने तथा आवश्यक पोषक तत्वों (उर्वरकों) के विवेकपूर्ण चयन में मदद मिलेगी।

OOO

2

पर्यावरण संरक्षण में हरित रसायन विज्ञान

डॉ. दिनेश मणि

सारी दुनिया के रसायन विज्ञानी पर्यावरण हितैषी रसायनों की खोज में संलग्न है। रसायनों द्वारा मानव–समुदाय एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि रसायन विज्ञान, जहां तक संभव हो, पर्यावरणीय दृष्टि से अधिक अनुकूल हो। पर्यावरण से संबंधित समस्याएँ सभी के लिए चिंता का विषय बनी हुई हैं। जो लोग पर्यावरण–परामर्श तथा अनुसंधान एवं विकास कार्यों से जुड़े हुए हैं, वे यह भली–भाँति जानते हैं कि विभिन्न उद्योग किस प्रकार पर्यावरण को प्रभावित कर रहे हैं। चिर–परिचित वादों एवं घोषणाओं के बावजूद आज तक कई उद्योग निर्धारित पर्यावरणीय मानकों का शत–प्रतिशत अनुपालन नहीं कर पा रहे हैं। अपशिष्ट पदार्थों के निपटान की विभिन्न विधियों से भी कई बार कई अन्य प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तों उद्योगों में चिरकाल से चली आ रही कामचलाऊ एवं निम्नस्तरीय रसायन विधियां ही इसके लिए जिम्मेवार हैं।

विगत कुछ वर्षों से रसायन–विज्ञानी ऐसी नई रासायनिक विधियाँ तैयार करने में लगे हैं जो मानवीय स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए कम हानिकारक हैं। हाल के वर्षों में इस नए दृष्टिकोण ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है तथा इसे हरित रसायन विज्ञान, सौम्य रसायन–विज्ञान आदि कई नाम दिए हैं। इन सभी में इस बात का ध्यान रखा जा रहा है कि रसायन–विज्ञान का प्रयोग इस प्रकार किया जाए कि लक्ष्य परमाणुओं के गुणों अथवा एक विशेष अभिकर्मक की क्षमता के साथ रसायन–विज्ञान प्रक्रिया के परिणाम बाधित न हों।

सारी दुनिया के रसायन–विज्ञानी पर्यावरण –हितैषी रसायनों की खोज में संलग्न हैं। रसायनों द्वारा मानव रामुदाय एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि रसायन–विज्ञान, जहां तक संभव हो, अधिक सौम्य हो। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर हरित रसायन–विज्ञान की कल्पना की गई है।

निस्संदेह, पिछले एक दशक में रसायन–विज्ञान के बेहतर प्रयोग से आर्थिक विकास एवं पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति काफी जागरूकता आई है। रसायन विज्ञान के इस नवीन व उभरते बेहतर प्रयोग को

ISSN 2320-7736

ही हरित रसायन विज्ञान अथवा संधारणीय पर्यावरणीय विकास का रसायन विज्ञान कहा जाता है। मूल रूप से हरित रसायन विज्ञान ऐसे पर्यावरणीय सौम्य रसायनों की उत्पादन विधि है, जो न केवल पर्यावरणीय दृष्टि से अपितु कार्य–क्षमता तथा आर्थिक रूप से भी श्रेष्ठ हों।

वास्तव में "जोखिमकारी तत्वों के उत्पादन को खत्म करने अथवा कम करने के लिए रासायनिक उत्पादों तथा प्रक्रियाओं की खोज, उनकी संरचना और उनका उपयोग ही हरित रसायन विज्ञान है।"

रसायन–विज्ञानी जो रसायन तैयार करते हैं, उनका मानव समुदाय एवं पर्यावरण पर काफी प्रभाव पड़ता है। हरित रसायन विज्ञान के नए प्रतिभागों के अंतर्गत विश्व भर के रसायन–विज्ञानी नई संश्लेषित विधियों, प्रतिक्रियात्मक स्थितियों, विश्लेषणात्मक उपकरणों, उत्प्रेरकों तथा प्रक्रियाओं के निर्माण व विकास में लगे हैं। रसायन–विज्ञानियों के समक्ष यह एक चुनौती है कि अब तक जो रसासन–विज्ञान में किया गया है अथवा किया जा रहा है उस श्रेष्ठ कार्य को ध्यानपूर्वक देखा जाए और फिर निर्णय किया जाए कि "जिस रसायन विज्ञान का प्रयोग किया जा रहा है, वह कितना सौम्य है?" एक स्पष्ट किंतु महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि कुछ भी सौम्य नहीं है। वास्तव में सभी तत्वों तथा सभी कर्यों का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। सौम्य प्रारूप अथवा पर्यावरण हितैषी रसायन विज्ञान एक कल्पना है, रसायन विज्ञान का वह आदर्श स्वरूप है, जिसके बारे में यहाँ चर्चा की जा रही है। रसायन विज्ञान को जहाँ तक संभव हो सके और अधिक सौम्य बनाना इसका उद्देश्य है। जिस प्रकार निर्माणकर्ताओं द्वारा "जीरो डिफेक्ट" (शून्य दोष) की कल्पना की गई थी उसी प्रकार सौम्य रसायन विज्ञान भी परिष्करण की पराकाष्ठा के उद्देश्य से की गई एक कल्पना व विचार है।

हरति रसायन विज्ञान की अवधारणाएं इस प्रकार हैं–

- आण्विक कार्यक्षमता – उन प्रक्रियाओं के नमूने तैयार करना जिनकी बदौलत उस कच्चे माल की मात्रा को अधिक से अधिक बढ़ाया जा सके, जिसे अंततः उत्पाद में बदल दिया जाता है।
- ऊर्जा की खपत – बेहतर ऊर्जा प्रक्रियाओं के नमूने तैयार करना।
- अपशिष्ट में कमी लाना – इस बात का अहसास करना/कराना कि अपशिष्ट के निपटान का सबसे बेहतर तरीका यही है कि इसे पैदा ही न होने दिया जाए।
- स्थानापन्न विकल्प देना – अधिक सुरक्षित पर्यावरण–मैत्रीपूर्ण कच्चा माल एवं द्रव अथवा द्रवमुक्त प्रक्रियाओं को प्रयोग में लाना।

सुरक्षित रसारयनों के उत्पाद/निर्माण हेतु रासायनिक संरचना की सम्पूर्ण जानकारी अति आवश्यक है।

संरचना के हिस्सों की पहचान करने के लिए रासायनिक संरचना का विश्लेषण विशिष्टिताओं के साथ–साथ संरचना के उस हिस्से को भी उपलब्ध कराता है, जो विषालुता के लिए उत्तरदायी है।

 ISSN 2320-7736

यह एक सुरक्षित रसायन के निर्माण के लिए बहुत जरूरी है। एक विशेष तत्व की जानकारी प्राप्त करने के लिए जो विभिन्न योजनाएं अपनायी जाती हैं, उनमें रासायनिक संरचना–क्रिया संबंध की कार्य प्रणाली का ज्ञान हो तो शून्य–विषालुता बिंदु का भी पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार विषालुता को पूरी तरह से समाप्त कर एक सुरक्षित रसायन का निर्माण किया जा सकता है। संरचना–क्रिया संबंध एक सुरक्षित रसायन के प्ररूप निर्माण की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डालता है। किसी एक तत्व का एक मेथिल–प्रतिस्थापी अनुरूप विषालु हो सकता है, परंतु एक एथिल से प्रोपिल अनुरूप इससे हमें बचा सकता है। इसलिए प्रयोगाश्रित संरचना–क्रिया संबंध एक शक्तिशाली प्ररूप निर्माण यंत्र है। सुरक्षित रसायनों का निर्माण विषालु क्रियात्मक समूह को हटा कर भी किया जा सकता है। उत्प्रेरक, धातु जमा, निष्कर्षण तथा बैटरी आदि कार्यों में इनका प्रयोग किया जा सकता है। अतिक्रांतिक द्रव भी नुकसानदायक विलायकों का एक अच्छा विकल्प है। जब द्रव/गैस उपयुक्त उच्च तापमान तथा दाब स्थितियों में विलक्षण गुणों को धारण कर लेते हैं तो वे एक ऐसा रूप ग्रहण करते हैं, जो न तो द्रव गैस होता है और न ही गैस, अपितु एक मितस्थायी (मेटास्टेट) होते हैं। इन्हें ही अतिक्रांतिक द्रव कहा जाता है। ये विषालु अथवा ज्वलनशील नहीं होते हैं, अपितु अत्यधिक शुद्ध होते हैं। इनका परावैद्युतांक उच्च होता है तथा अभिक्रिया के उपरांत उच्च प्रतिप्राप्ति दर भी इनकी विशेषता है। इस प्रकार ये वैद्युत रासायनिक तकनीकों तथा सम्मिश्रों के पृथकन (जैसे कि कॉफी से कैफीन हटाना), वैद्युत–कार्बनिक संश्लेषण, उत्प्रेरण और बहुलक उत्पादन आदि कार्यों में काफी उपयोगी है। इसके अतिरिक्त विलायक–रहित प्रणालियों में भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

प्रारंभिक सामग्री का चयन संपूर्ण प्रक्रिया के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। कच्चे माल के मूल्यांकन के प्रथम चरण में विषालुता, दुर्घटना की संभावनाएं तथा पारिस्थितिकी–तंत्र को होने वाले नुकसान का मूल्यांकन शामिल है। आमतौर पर प्रक्रिया की निरंतरता के लिए गैर–पारंपरिक पोषक तत्वों की क्षरित हो रहे पोषक तत्वों के साथ तुलना काफी महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए आज पेट्रोलियम आधारित पोषक तत्वों के स्थान पर जैव–आधारित पोषक तत्वों के प्रयोग का अधिक चलन है, क्योंकि यह अधिक लाभकारी एवं पर्यावरण हितैषी है। प्रकाश–उत्प्रेरण, जिसमें अन्य विषालुओं के स्थान पर प्रकाश का प्रयोग किया जाता है, आज अनुसंधान का मुख्य क्षेत्र है। इसके साथ–साथ पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझाने में इसके प्रयोग से संबंधित अध्ययन करना भी आवश्यक है। रसायन निर्माण प्रक्रियाओं में अपशिष्ट जीवनसमूह का रासायनिक पोषक तत्व के रूप में उपयोग करने से ऐसे अपशिष्ट के निर्माण में कमी लाई जा सकती है।

हरित रसायनविज्ञान में सौम्य अभिकर्मक तथा सांश्लेषिक उपाय शामिल हैं, जिनमें अ–विषालु अभिकर्मक भी सम्मिलित हैं और इसके परिणामस्वरूप कम मात्रा में अपशिष्ट निर्माण होता है। उपचायक रूपांतरण के लिए ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन पर–ऑक्साइड को चुनिंदा रूप में सक्रिय करने की

प्रणालियों के निर्माण हेतु स्वच्छ अभिकर्मक जैसे कि हाइड्रोजन पर–ऑक्साइड, जो कि उपोत्पाद के रूप में केवल जल का निर्माण करता है, का उपयोग किया जा रहा है। यह सामग्री सजातीय एवं विजातीय उत्प्रेरण में मुख्य भूमिका निभाती है तथा उत्पादन अधिक होता है।

आज हरित विद्युत्–रसायन विज्ञान में हरित अभिकर्मकों के रूप में इलेक्ट्रॉन का प्रयोग अनुसंधान का एक अन्य विषय है। इलेक्ट्रॉन एक विशिष्ट उपचयन/अपचयन शक्ति/क्षमता पर विशिष्ट चयन के साथ वांछित प्रतिक्रिया कर सकते हैं। प्रतिक्रिया की दर को लागू विद्युत् प्रवाह द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है तथा यदि जलीय विद्युत्–अपघट्य का उपयोग किया जाता है तो ऑक्सीजन व हाइड्रोजन के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के उपोत्पाद का निर्माण नहीं होता है। विद्युत् रसायन प्रौद्योगिकी द्वारा 200 यौगिकों का निर्माण किया गया है।

जब उद्देश्य रसायन विज्ञान के क्षेत्र एवं सामान्य रूप से समाज के लिए महत्वपूर्ण हो तो ऐसे क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए काफी मात्रा मे निधि तथा मान्यता उपलब्ध हो जाती है। हरित रसायन विज्ञान में अनुसंधान के लिए उपलब्ध निधि में भी पिछले कई सालों से बहुत वृद्धि हुई है। हरित रसायनविज्ञान में अब तक किए गए अनुसंधनों की गुणवत्ता के स्तर एवं प्राप्त हुए संभावति आर्थिक लाभ के मद्देनजर इसके समर्थन में सतत वृद्धि की संभावना है।

प्राकृतिक उत्पादों के संश्लेषण के उद्देश्य वाले प्रत्येक अनुसंधान प्रस्ताव द्वारा अक्षेपित उत्पादों की प्राप्ति नहीं हुई है तथा न ही रसोचिकित्सकीय कर्मक की हर अनुसंधान योजना लक्ष्य में सफलता हुई है। परंतु ऐसे अनुसंधान से श्रेष्ठ रसायनविज्ञान की प्राप्ति अवश्य हुई है। हरित रसायन विज्ञान के संबंध में भी यह सही है। जरूरी नहीं है कि प्रत्येक परियोजना अहानिकारक निवेश सामग्री अथवा अभिकर्मकों अथवा सौम्य परिस्थितियों व उत्पाद के लक्ष्य को प्राप्त करें, परंतु इस आवश्यक एवं लाभकारी लक्ष्य के लिए किए जा रहे प्रयासों में इन परियोजनाओं का योगदान निश्चित रूप से श्रेष्ठ होगा।

इस प्रकार हरित रसायन एक ऐसा विज्ञान–आधारित दृष्टिकोण प्रदान करता है जिससे खोज तथा सतत् आर्थिक विकास के अवसर प्राप्त होते हैं। कई राष्ट्र हैं, जिन्होंने हरित रसायन विज्ञान में अत्यधिक सक्रिय रहकर इसके सफल क्रियान्वयन का उदाहरण कायम किया है। अतः आज भावी रसायन उत्पादों एवं प्रक्रियाओं के कार्यों से होने वाले जोखिम पर गंभीरता–पूर्वक विचार करना आवश्यक है। साथ ही दुष्प्रभाव न्यूनीकरण तथा प्रक्रिया इष्टतमीकरण के प्रयास करने होंगे।

हरित रसायन विज्ञान का लक्ष्य पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के साथ–साथ आम लोगों के लिए रासायनिक उत्सर्जन के संकट और खतरों को कम करना भी है। इसके लिए ऐसी बातों को अपनाने और अमल में लाने की जरूरत पड़ती है जिनके द्वारा मनुष्य और इसके पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम से कम किया जा सके।

हरित रसायन विज्ञान की सहायता से अत्यधिक हानिकारक किस्म के रसायनों के विकल्प ढूँढें जा रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से रसायन विज्ञान के बेहतर प्रयोग से आर्थिक विकास एवं पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति काफी जागरूकता आई है। जब से विशेषज्ञों ने पर्यावरण संबंधी खतरों को मुख्य बिंदु माना है, तब से उच्चस्तरीय एवं श्रेष्ठ रसायन की दिशा में प्रयास किए जाते रहे हैं।

रसायन–विज्ञानी अपने रासायनिक ज्ञान का उपयोग हरित रसायन–विज्ञान में कर सकते हैं और अपेक्षाकृत अधिक परिशुद्ध एवं पर्यावरण अनुकूल प्रक्रियाओं में होने वाली तमाम खोजों के लिए इससे प्राप्त समन्वित लाभों को उचित ठहरा सकते हैं। रसायन विज्ञानियों के लिए जरूरी है कि वे ज्ञान–विज्ञान की दूसरी शाखाओं के साथ भी तालमेल बैठाएं। विशेष रूप से रसायन–विज्ञानियों को यांत्रिक अभियंताओ के साथ मिल–बैठकर प्रमाणिक प्रक्रियाओं को विकसित करने की दिशा में काम करने की जरूरत है।

OOO

3

मृदा उर्वरता के लिए वर्मी कंपोस्ट

विजय चितौरी

किसानों द्वारा कंपोस्ट खादों के प्रति अरुचि और रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग से मिट्टी की उर्वरता लगातार घटती जा रही है। मृदा उर्वरता बढ़ाने वाले सूक्ष्म जीव और केंचुए लगभग समाप्त हो गए हैं। रासायनिक खादों के लगातार बढ़ने से फसलोत्पादन या तो स्थिर है या गिरता जा रहा है। यदि स्थिति पर नियंत्रण के शीघ्र प्रयास नहीं किए गए तो लाखों करोड़ों वर्षों में प्रकृति ने जिस कीमती मिट्टी को तैयार किया है वह फसलोत्पादन में असमर्थ हो जाएगी और देश गंभीर खाद्य संकट में फंस जाएगा।

दुनिया भर के मृदा वैज्ञानिकों ने मृदा उर्वरता की इस समस्या को गंभीरता से लिया है। मृदा उर्वरता बढ़ाने के लिए कंपोस्ट बनाने की नई विधियां खोजी गई हैं, जैव उर्वरकों और जैविक कीटनाशियों का विकास किया गया है। 'जमीन का हलवाहा' कहे जाने वाले केंचुए को पालने और उससे कीमती खाद 'वर्मी कंपोस्ट' बनाने का आसान रास्ता भी खोजा गया है।

इस लेख को हम केंचुआ और वर्मी कंपोस्ट पर केंद्रित कर रहे हैं। केंचुए मिट्टी को पलटकर उसमें वायु संचार तथा उसकी जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाते हैं। केंचुओं से युक्त मिट्टी वर्षा जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाती हैं। केंचुओं से युक्त मिट्टी वर्षा जल को 120 मिली प्रति घंटे की दर से अवशोषित करती है लेकिन बिना केंचुओं वाली मिट्टी वर्षाजल को मात्र 10 मिली प्रति घंटे की दर से ही अवशोषित करती है। केंचुए अपने मल को मिट्टी की ऊपरी सतह पर छोड़ते हैं। इसमें सम–अक्ष (पैराट्रोपिक) झिल्ली होती है जो जमीन में धूल के कणों के चिपक कर मिट्टी की ऊपरी सतह को ढकती है जिससे मिट्टी का वाष्पीकरण रुकता है। इससे सूर्य की किरणों द्वारा होने वाली मिट्टी की जलहानि भी रुकती है। इस प्रकार केंचुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सिंचाई, जल की मांग को घटाते हुए जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

केंचुआ पालनः

1970 के दशक से हमारे देश में हरित क्रांति की शुरुआत हुई। इसी के साथ मिट्टी में उर्वरकों का उपयोग शुरू हुआ। अधिक से अधिक पैदावार लेने के लिए उर्वरकों का इस्तेमाल लगातार बढ़ाया गया। इन रासायनिक खादों के इस्तेमाल का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि मिट्टी बेजान हो गई। इस मिट्टी से उपजाए अनाज, फल और सब्जियां बेस्वाद हो गए हैं। इनकी पौष्टिकता घट गई है। इनके लगातार इस्तेमाल से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घट गई है। फलतः आज आदमी तमाम तरह की बीमारियों की चपेट में आ गया है।

इन स्थतियों को देखते हुए वैज्ञानिकों का ध्यान नन्हे से प्राणी केंचुए की ओर गया। वैज्ञानिकों को आशा की किरण दिखाई दी कि यदि व्यापक पैमाने पर केंचुआ पालन किया जाए और केंचुए की खाद (वर्मी कंपोस्ट) का इस्तेमाल किया जाए तो बिगड़ी हुई मिट्टी की सेहत सुधारी जा सकती है। इन्हीं स्थितियों के बीच केंचुआ पालन की योजनाएं बनाई गई।

केंचुए को अंग्रेजी में 'अर्थ वर्म' (Earth Worm) कहते हैं। पूरे विश्व में इसकी करीब 700 जातियां पाई जाती हैं। इन्हें मोटे तौर पर तीन भागों में बांट सकते हैं:

1. एपीजीइक– वे केंचुए हैं जो भूमि की सतह पर रहते हैं।

2. एनीसिक– ये भूमि की मध्य सतह में रहते हैं।

3. एन्डोजीइक– यह जमीन की गहरी सतह में रहते हैं।

भारतीय परिस्थितियों में वर्मी कंपोस्ट के लिए दो किस्में सर्वोत्तम पाई गईं–

1. आइसीनिया फोटिडा

2. यूडिलस यूजिनी

आइसीनिया फोटिडा को रेड वर्म भी कहते हैं। उत्तर भारत में ज्यादातर इसे ही पाला जाता है। यह लाल भूरे या बैगनी रंग का होता है। इसकी उत्पादन क्षमता काफी अधिक तथा रखरखाव आसान होता है। यूडिलस यूजिनी का उपयोग दक्षिण भारत में ज्यादा होता है। कम तापमान के साथ–साथ यह उच्च तापमान भी सहन कर सकता है।

वर्मीकंपोस्ट तैयार करना

वर्मी कंपोस्ट किसी भी छायादार स्थान पर तैयार किया जा सकता है। यह स्थान ऐसा हो जहां पानी न एकत्र होता हो। वर्षा में इस स्थान पर छप्पर आदि डालना जरूरी होता है ताकि केचुओं को पानी की अधिकता के कारण दिक्कत न हो।

सर्वप्रथम 6 फुट लंबे, 3 फुट चौड़े तथा 3 फुट गहरे गड्ढे बनाए जाते हैं। आवश्यकतानुसार गड्ढों की लंबाई बढ़ाई जा सकती है। गड्ढा बनाने के बाद गड्ढे की तली में 3–5 सेमी. मोटाई की ईंट या पत्थर की गिट्टी की तह बिछाते हैं। उसके ऊपर मोरंग अथवा बालू की 3–5 सेमी.

ऊंचाई की तह बिछाते हैं। बालू के ऊपर 12–15 सेमी. मोटाई में अच्छे खेत की छनी हुई मिट्टी की तह बिछाकर बराबर कर देते हैं। इस मिट्टी के ऊपर पानी छिड़क कर नम कर देते हैं। मिट्टी में 25 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार से यह गिट्टी, बालू एवं मिट्टी से बनाई गई तह 'वर्मीबेड' या केंचुएं का बिछौना कहलाता है।

इसके बाद बनाए गए गड्ढे में 8–10 जगह गोबर के छोटे–छोटे ढेर बना देते हैं, इनके ऊपर एपीजीइक एवं एनीसिक वर्ग के 50–60 केंचुएं डाल देते हैं। अब इस यूनिट को 20–25 दिन के लिए ऐसे ही छोड़ देते हैं, सिर्फ नमी बनाएं रखने हेतु पानी का छिड़काव प्रतिदिन करते हैं। 20–25 दिनों में केंचुओं की संख्या काफी बढ़ जाती है। यही केंचुए आगे गड्ढे में खाद बनाने में सहयोग करते हैं। अब इस गड्ढे में घर से निकलने वाले कूड़े–कचरे को डालते हैं। इस बात का ध्यान रखें कि एक बार में डाले गए कूड़े–कचरे की ऊँचाई 2–3 इंच मोटी परतों में ही रहे। इस घरेलू कूड़े–करकट में कुछ मात्रा गोबर की भी होनी चाहिए क्योंकि यही गोबर केंचुओं के भोजन के काम आता है। साथ ही डाले जा रहे कृषि या रसोई कचरे को काटकर छोटे–छोटे टुकड़े कर लें, जो आकार में 2 इंच से बड़े न हों। यदि आकार बड़ा होगा तो कंपोस्ट बनने में अधिक समय लगेगा। गड्ढे में किचन या कृषीय अपष्टि डालते समय यह ध्यान रखें कि उनकी तहें 2–3 इंच से ज्यादा मोटी न हो अन्यथा किचन अपशिष्ट के सड़ने से गर्मी अधिक पैदा हो जाएगी; जो केंचुओं के लिए हानिकारक भी हो सकती है। इस प्रकार जब गड्ढा भर जाए तो उसे पुआल या टाट के बोरों से ढक देना चाहिए तथा नमी बनाए रखने हेतु गड्ढों में प्रतिदिन पानी का छिड़काव जरूरी होता है। इस प्रकार से 3 माह में खाद बनकर तैयार हो जाती है।

वर्मीकंपोस्ट से लाभः

इसके उपयोग से मिट्टी में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ जाती हैं। वर्मी कंपोस्ट के पोषक तत्व पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। मिट्टी के जीवांश (ह्यूमस) में वृद्धि से मिट्टी की संरचना, वायुसंचार तथा जल धारण क्षमता बढ़ जाती है। इसके माध्यम से कूड़े–कचरे, पत्ते, डंठल आदि का पुनश्चक्रण (रिसाइक्लिंग) आसानी से हो जाता है। इससे कृषि उत्पादों की गुणवत्ता तथा स्वाद बढ़ जाता हैं।

वर्मीकंपोस्ट में पोषक तत्व–

कई अध्ययनों से पता चला है कि वर्मीकंपोस्ट में पोषक तत्व साधारण गोबर खाद की तुलना में अधिक होते हैं। साथ ही पौधों में रोग प्रतिरोधक बढ़ाने वाला ऐंटीबायोटिक, जिसे एक्टिनामाइसिटीज कहा जाता है, इस खाद में आठ गुना ज्यादा मात्रा में पाया जाता हैः–

पोषक तत्व	साधारण गोबर खाद में (प्रतिशत मात्रा)	वर्मीकंपोस्ट में
नाइट्रोजन	0.8	2.00
फास्फोरस	0.05	1.02
पोटाश	1.00	1.00
सल्फर	1.00	0.04
कैल्सियम	--	1.5 (PPM)
मैग्नेशियम	--	1.5 (PPM)
मॉलिब्डेनम	--	1.0 (PPM)
बोरॉन	--	2.34
जिंक	--	10.60
लोहा	--	4.65
कॉपर	2.33	--
मैंग्नीज	--	0.20

वर्मी कंपोस्ट प्रयोग की मात्रा

क्र.	फसल का नाम	वर्मीकंपोस्ट (टन में) प्रति एकड़
1.	दलहनी एवं खाद्यान्न फसल	2 टन बुवाई–रोपाई से पूर्व
2.	तिलहनी फसल	3 टन बुवाई से पूर्व
3.	मसाला एवं सब्जी फसल	4 टन रोपाई से पूर्व
4.	फूल वाली फसल	5 टन पौध रोपण से पूर्व
5.	फलदार पौधों में रोपण के समय	5 किग्रा./वृक्ष
6.	गमलों में	मिट्टी के भार का 10 प्रतिशत
7.	लॉन में	2 किग्रा. प्रति वर्गमीटर

सावधनियां:

1. प्रति सप्ताह क्यारी (बेड) को एक हाथ से पलट देना चाहिए ताकि गोबर पलट जाए और वायु संचार हो और बेड में गर्मी न बढ़ने पाए।

2. कभी भी ताजा गोबर न प्रयोग किया जाए क्योंकि ताजा गोबर गर्म होता है, इससे केंचुए मर सकते हैं।

3. बेड में सदैव 35–50 प्रतिशत नमी बनाए रखी जाए। इसके लिए मौसम के अनुसार समय–समय पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। वर्षा ऋतु में पानी छिड़कने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। शरद ऋतु में दूसरे–तीसरे दिन पानी का छिड़काव एवं ग्रीष्म ऋतु में रोजाना पानी छिड़कना चाहिए।

4. सांप, मेढक, छिपकली से बचाव हेतु मुर्गा जाली प्लेटफार्म के चारों और लगानी चाहिए। दीमक, चींटी से बचाव हेतु प्लेटफार्म के चारों तरफ नीम का काढ़ा प्रयोग करते रहना चाहिए।

5. बेड का तापमान 8 से 30 डिग्री सेग्रे. से कम ज्यादा न होने दिया जाए। 15 से 25 डिग्री सेग्रे. तापमान पर यह सर्वाधिक क्रियाशील रहते हैं तथा खाद शीघ्र बनती है।

6. हवा का संचार पर्याप्त बना रहे किंतु रोशनी कम से कम रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

वर्तमान परिस्थियों में जब रासायनिक खादों का दुष्प्रभाव स्पष्ट हो गया है। इनकी उपलब्धता भी सुनिश्चित नहीं है तब वर्मी कंपोस्ट किसानों के लिए आशा की एक किरण है। इसका उत्पादन करके किसान अपनी मिट्टी की उर्वरता तो कायम रखेंगे ही साथ–साथ वे अपना धन भी बचा सकेंगे।

इलाहाबाद जिले में विकास खंड जसरा अंतर्गत टिकरी गांव के निवासी प्रगतिशील किसान श्री चंद्र प्रकाश कुशवाहा अच्छे वर्मी कंपोस्ट उत्पादक हैं। वे 2005 से वर्मी कंपोस्ट का उत्पादन कर रहे हैं और अपने खेतों में वर्मी कंपोस्ट का ही उपयोग करते हैं। क्षेत्र के अन्य कई किसान भी केचुआ पालन कर रहे हैं।

ooo

4

लाख की खेती में जैव–प्रौद्योगिकीः एक नया विकल्प

डॉ. विनय कुमार मिश्रा, डॉ. तमिलरसी के. एवं डॉ. के. के. शर्मा

प्रस्तावना

लाख की खेती का अर्थ लाख के कीटों का अपने पोषक पौधों पर पालन–पोषण है। सामान्यतः भारत में जिस लाख की खेती की जाती है उसका वैज्ञानिक नाम कोरिया लैका है। ये कीट केवल अपने निश्चित पोषक वृक्षों पर ही विकसित होते है, भारत में लाख कीट हेतु पाए जाने वाले पौधे कुसुम, पलास तथा बेर हैं। लाख की खेती विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है, तथा ये कारक लाख उत्पादन के लिए हानिकारक होते हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए विभिन्न वैज्ञानिक उपाय किए गए हैं, जिनमें से एक तरीका जैव प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल है। किसी उत्पाद को बनाने या विकसित करने के लिए जैव प्रणाली या जीव का प्रयोग करना जैव प्रौद्योगिकी कहलाता है। कोई भी तकनीकी प्रयोग जो किसी उत्पाद अथवा विशिष्ट प्रक्रिया को बनाने या संशोधित करने हेतु जैव प्रणाली, जीवों या उनके व्युत्पन्नों का उपयोग करता है, इस प्रौद्योगिकी का अंग होता है। किसी भी जीव में जीन का प्रत्यारोपण या मौजूद जीन को निष्क्रिय करना जैव–प्रौद्योगिकी का मूल आधार है। आजकल फसलों में जीन प्रत्यारोपण द्वारा ऐसी किस्मों का विकास किया जा रहा है, जो कई अर्थों में क्रांतिकारी कही जाती हैं। विश्व की बढ़ती समस्याओं को हल करने के लिए जैव–प्रौद्योगिकी को भविष्य की समर्थ तकनीक के रूप में देखा जा रहा है। इसकी कृषि में असीम संभावनाएं हैं, लेकिन कोई भी नवीन प्रौद्योगिकी अपने साथ लाभ एवं हानि दोनों लेकर आती है, जिसका सही पूर्वानुमान लगाना कठिन होता है।

जैव–प्रौद्योगिकी के उद्देश्य

1. जैव प्रौद्योगिकी का उद्देश्य प्रति इकाई भूमि क्षेत्रफल से कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त करना।

2. जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा फसलों में शुष्क सहिष्णुता, पोषक तत्वों का उन्नयन तथा कीट–रोगी एवं रोग–रोधी गुणों को समावेशित करना।

3. जैव प्रौद्योगिकी द्वारा पादप प्रजनन में प्रयुक्त होने वाली प्रारंभिक तकनीकों को उन्नत कर खाद्य उत्पादन को वांछित स्तर तक पहुंचाना।

4. जैव प्रौद्योगिकी द्वारा पृथक्करण तथा विशिष्ट जीन की पहचान द्वारा नए पराजीनी पौधों का विकास करना।

5. फसलों की आनुवांशिक क्षमता को जैव प्रौद्योगिकी तकनीक द्वारा सुदृढ़ करने का प्रयास करना।

जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका

1. फसलों की नवीनतम किस्मों का विकास करना।

2. पशुओं की उन्नत नस्लों का विकास एवं रोग नियंत्रण करना।

3. जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग कृषि एवं बागवानी फसलों की नई प्रजातियों के विकास में अहम् भूमिका निभा सकता है। चूंकि परंपरागत प्रजनन विधियों से आधुनिक फसलों में नई प्रजाति विकसित करने के लिए अधिक समय लगता है। अतः इस तकनीक द्वारा इन फसलों की नई प्रजातियों को कम समय में विकसित किया जा सकता है।

ऐसे विभिन्न साधन हैं, जिसमें लाख की खेती की बेहतरी हेतु जैवप्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया जा सकता हैं। ये निम्नलिखित हैं:

(1) बेहतर उपज हेतु पोषक वृक्षों की पहचान एवं अधिक गुणन।

(2) जैविक एवं अजैविक तनाव सहने हेतु पराजीनी पौधे।

(3) परजीवी, परभक्षी एवं अन्य शत्रु जीवों की आण्विक जांच।

(4) उन्नत लक्षणों हेतु आनुवांशिक रूप से संशोधित कीट।

(5) लाख राल एवं रंजक का पात्रे (इन विट्रो) उत्पादन।

(6) बेहतर उपज हेतु पोषक वृक्षों की पहचान एवं अधिक गुणन।

साधारणतया लाख कीट के पोषक पौधे कुसुम, पलास एवं बेर बहुवर्षी पौधे हैं। इन वृक्षों की सभी प्रजतियाँ समान लाख उत्पादन नहीं देतीं। कुछ जातियां कम लाख उत्पादन देती हैं। डी. एन. ए. आधारित आण्विक चिह्न विकसित कर अधिक लाख उत्पादन करने वाली जातियों की पहचान की जा सकती है तथा उन्हें लाख उत्पादन हेतु बढ़ावा दिया जा सकता है। चिह्नित अधिक उत्पादन देने वाले पौधों को वानस्पतिक विधि द्वारा उत्पादित कर उसी तरह के पौधे का अधिक गुणन प्रयोगशाला में कीटाणु–नाशक वातावरण में किया जा सकता है। ऊतक संवर्धन द्वारा कम समय तथा कम जगह में अधिक संख्या में पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

2. जैविक एवं अजैविक तनाव सहयता हेतु पराजीनी पौधे

लाख के पोषक पौधे अक्सर कई कीटों और रोगों से प्रभावित होते हैं। इन जैविक कारकों के अलावा कई अजैविक कारक तथा सूखा, लवणता, जल जमाव, तापमान आदि भी लाख पोषक पौधों को प्रभावित करते हैं। जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से जीनान्तरित पौधे पैदा किए जा सकते हैं, जो जैविक और अजैविक दोनों तरह के तनाव को

सहन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए फ्लेमिन्जिया सेमियालेटा (एक झाड़ीदार लाख पोषक पौधा) इन दिनों तेजी से आ रहा है, हालाँकि यह एक सूखी संवेदनशील फसल है तथा इसे बिना सिंचाई के ग्रीष्मकालीन फसल की तरह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

किसी अन्य जीव से सूखा–सह्य जीन फ्लेमेंजिया में संचारित कर उसे सूखा–सह्य जीनान्तरित पौधा फसल की तरह बिना सिंचाई के भी इस्तेमाल किया जा सकता है। चिह्नक की सहायता से आण्विक प्रजनन तकनीक का उपयोग सूखा प्रतिरोधी, कीटों एवं रोग प्रतिरोधी जैसे वांछित लक्षणों वाले पौधे विकसित करने में किया जा सकता है।

3. परभक्षी एवं लाख कीट के अन्य शत्रुओं की आण्विक जांच–

लाख फसल की सुरक्षा के लिए जरूरी है कि प्रकोप को शुरुआत में ही पहचान लिया जाए। लाख फसल की अपरिपक्व अवस्था में परभक्षी का पता लगाना एवं पहचान करना बहुत कठिन है। अतः आण्विक जीव–विज्ञान विधि लाख की फसल में परभक्षी का पता लगाने में मददगार होगी। सिर्फ परभक्षी प्रकोपी ही नहीं कोई भी अन्य बैक्टीरिया कवक, विषाणु (वायरस) आदि जो कि लाख कीट में रोग उत्पन्न कर सकते हैं, उन्हें भी जैवप्रोद्योगिकी उपकरणों द्वारा पहचाना जा सकता है। बहुलक शृंखला अभिक्रिया (पी. सी. आर.) तकनीक में लाख कीट के डी. एन. ए. की बहुत कम मात्रा हानिकारक जैविक घटकों को पहचानने के लिए आवश्यक होती है।

4. उन्नत लक्षणों हेतु आनुवंशिक रूप से संशोधित कीट–

जैविक कारक जैसे परजीवी एवं परभक्षी तथा अजैविक कारक जैसे उच्च तापमान, लाख की खेती को प्रतिकूल प्रभावित करते हैं। जैव प्रौद्योगिकी के आविष्कार से परजीवी एवं परभक्षी लाख कीटों को विकसित करना संभव हो पाया है। इसी तरह ताप–सह लाख कीटों का विकास भी संभव है। लाख कीटो में गुणवत्ता एवं उत्पादकता के लक्षणों के लिए चिह्न का विकास आण्विक तकनीक द्वारा किया जा सकता है। चिह्न सहायक तकनीक द्वारा जनक चयन करने इच्छित संतति की पहचान की जा सकती है। परिणामस्वरूप, उच्च उत्पादकता एवं अच्छी गुणवत्ता वाले कीट उत्पादित किए जा सकते है।

5. लाख राल एवं रंजक का प्रयोगशाला में पात्रे (इनविट्रो) उत्पादन–

किसी भी जीव से जीन अलग करने हेतु आण्विक जीवविज्ञान में विभिन्न तकनीकें उपलब्ध हैं। इन तकनीकों का प्रयोग राल एवं रंजक संश्लेषण के लिए जिम्मेदार जीन को लाख कीटो से अलग करने में किया जाता है। एक बार महत्वपूर्ण जीन एवं उनके विनियामक तंत्र की जानकारी हो जाने पर राल एवं डाई के उत्पादन हेतु इसे दोहराया जा सकता है। किसी भी उपयुक्त तंत्र को इस उद्देश्य के लिए उपयोग में लाया जा सकता है,

हालाँकि लाख कीट की उचित कोशिका द्वारा ही राल एवं रंजक का उत्पादन ज्यादा उचित है। लाख कीट कोशिकाओं को प्रयोगशाला में कृत्रिम माध्यम या अन्य खुराक का उपयोग कर संवर्धित किया जा सकता है।

ooo

5

केंचुआ स्राव : उपयोगी जैविक उर्वरक

जग नारायण

देश में लगातार बढ़ती जैविक खेती की मांग की दिशा में प्रयोग कर नए साधन उपलब्ध कराने में लगे हुए कृषि वैज्ञानिकों ने गैर–रासायनिक जैविक उर्वरकों की सूची में वर्मी कंपोस्ट के बाद अब केंचुआ स्राव (वर्मी वॉश) की खोज कर ली है। जैविक खेती की ओर उन्मुख भारतीय किसानों के लिये केंचुआ स्राव एक बड़ा तोहफा है जिसने खेती की दिशा को नया साधन प्रदान किया है।

आइसोनियाफोडिटा जाति के पालतू बनाए जाने वाले केंचुओं के द्वारा स्रावित किए जाने वाली इस द्रव खाद में फसलों को पोषण प्रदान करने वाले हार्मोन्स, एंजाइम और पादप पोषक तत्वों की भारी मात्रा पाई जाती है। तरल श्रेणी की इस खाद का घोल बनाकर पौधों के पत्तों पर छिड़काव किया जाता है। इसका प्रयोग दलहन एवं अनाज वाली फसलों पर विशेष लाभकारी पाया गया है। सब्जियों में केंचुआ स्राव के प्रयोग से पुष्पन और फलन कर क्रिया में बढ़ोत्तरी और तेजी के साथ ही गुणवत्ता में भी वृद्धि पाई जाती है। केंचुआ स्राव फसलों पर लगने वाले रोगों का निवारण करने के साथ ही खेत की मिट्टी के स्वास्थ्य को भी बनाए रखने का काम करती है। कुल मिलाकर केंचुआ स्राव एक उत्तम और सस्ती जैविक खाद और रोगसंरक्षक द्रव प्रमाणित हो रही है।

केंचुआ स्राव का परिचयः

वास्तव में केंचुआ स्राव केंचुओं द्वारा स्रावित भूरे रंग का तरल पदार्थ है। इसमें फसलों के लिए उपयोगी उर्वरक एवं रोग निवारक अनेक तत्व पाए जाते हैं। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि केंचुओं द्वारा स्रावित इस भूरे द्रव में ऑक्सिन एवं साइटोकाइनिन श्रेणी के हार्मोन पाए जाते हैं। केंचुआ स्राव में पाए जाने वाले हार्मोनों के साथ ही उसमें प्रॉटीएज़, एमिलेस, यूरीए और फॉस्फेड श्रेणी के एंजाइम पाए जाते हैं। केंचुआ स्राव के सूक्ष्म जैविक परीक्षण से पता चला है कि इसमें नाइट्रोजन को स्थिर करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं की पर्याप्त मात्रा होती है। इसके अलावा इसमें एज़ेटोवैक्टर और एग्रोबेक्टीरियम पोषक सूक्ष्म जीव भी पाए जाते हैं।

ISSN 2320-7736

केंचुआ स्राव में पोषक तत्वों का विवरणः

पी. एच.	7.480 ± 0.03
इलेक्ट्रो कंडक्टिविटी (डेसी साइमन/मीटर)	0.25± 0.03
ऑर्गेनिक कार्बन (प्रतिशत)	0.008 ± 0.001
कुल जेलडाल नाइट्रोजन (प्रतिशत)	0.01± 0.005
उपस्थित फॉस्फेट (प्रतिशत)	1.69 ± 0.05
पोटैशियम (पी पी एम)	25 ± 2
कैल्शियम (पी पी एम)	0.01 0.001
कॉपर (पी पी एम)	0.01 0.001
फेरस (पी पी एम)	0.06 ± 0.001
मैग्नीशियम (पी पी एम)	158.44 ± 0.040
जिंक (पी पी एम)	0.02 0.001
कुल हेटेराट्रॉपस (सी एफ यू/मिली.)	1.79 × 103
नाइट्रोसोमोनास (सी एफ यू/मिली.)	1.01 × 103
कुल कवक (सी एफ यू/मिली.)	1.46 × 103
स्रोत : रामस्वामी, 2004 (पी पी एम)	

केंचुआ स्राव प्राप्ति की तकनीकः

पाले गए केंचुओं से उसके द्वारा स्रावित कृषि उपयोगी तरल या द्रव की प्राप्ति के लिए प्लास्टिक या लोहे की 20 लीटर क्षमता वाली टंकी ली जाती है। इस टंकी के निचले हिस्से में एक छेद किया जाता है। एक उर्ध्वाधर "T" आकार की पाइप को आधा इंच टंकी में डुबाकर स्थापित किया जाता है। इस उर्ध्वाधर नली के बाहरी हिस्से को जल की टोंटी से जोड़कर टंकी के अंदर वाले हिस्से को डमी नट से कस दिया जाता है। इस पूरे सेट को एक उपयुक्त चौकी या तिपाई पर रख दिया जाता है। टंकी में सबसे नीचे छोटे–छोटे ईंट और पत्थर के टुकड़ों एवं कंकड़ से 25–30 से.मी. तक भर दिया जाता है। इनके ऊपर 20–30 से.मी. मोटी बालू की तह लगा दी जाती है। पुनः इसके ऊपर 30 से 40 से.मी. सड़ा गोबर डाला जाता है। इसके ऊपर 3 से.मी. मिट्टी की परत डालने के बाद 60 से 80 के बीच आइसेनिया फोडिटा जाति के केंचुए डालकर ऊपर से 6 से.मी. पुआल रखकर इस टंकी को छायादार स्थान पर रख दिया जाता है। इस पुआल को हमेशा पानी से नम रखा जाता है।

सात से आठ दिन तक पुआल पर हल्के पानी का छिड़काव करते रहते हैं। टंकी की तल की टोटी को किसी प्लास्टिक की बोतल से जोड़ देते हैं। पाँच दिन के अंतराल पर टोंटी को खोलकर केंचुआ स्राव को बोतल में इकट्ठा कर लिया जाता है।

केंचुआ स्राव के प्रयोग की विधिः

1. बोतल में इकट्ठा किए गए एक लिटर केंचुआ स्राव को सात से दस लिटर पानी में मिलाकर पत्तियों पर शाम के समय छिड़काव करना चाहिए।

2. एक लिटर केंचुआ स्राव में एक लिटर गोमूत्र मिलाने के बाद उसमें दस लिटर पानी मिलाकर रात भर छोड़ देते हैं। इस प्रकार तैयार केंचुआ स्राव और गोमूत्र मिश्रित जल में मिले हुए द्रव की 50 से 60 लिटर मात्रा के छिड़काव से फसलों में लगने वाली बीमारियों से बचाव होता है।

3. गर्मी के मौसम वाली सब्जियों के जल्दी फलने में केंचुआ स्राव का घोल विशेष लाभकारी रहता है।

केंचुआ स्राव के प्रयोग में सावधानियाँः

(क) केंचुआ स्राव का छिड़काव हमेशा शाम को ही करना चाहिए। (ख) इसके घोल को तैयार

 ISSN 2320-7736

करते समय पानी की मात्रा के अनुपात का पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए। (ग) हवा के विरुद्ध इसका छिड़काव नहीं करना चाहिए। (घ) जब भी वर्षा होने की संभावना हो तो इसका छिड़काव नहीं करना चाहिए।

केंचुआ स्राव निर्माण प्रक्रिया के लिए आवश्यक निर्देशः

1. केंचुआ स्राव इकाई को हमेश छायादार जगह पर रखना चाहिए।

2. साँप, मेढ़क, छिपकली एवं नेवले से केंचुओं के बचाव की उपयुक्त व्यवस्था करनी चाहिए।

3. नमी बनाए रखने के लिए साफ पानी का लगातार प्रयोग करते रहना चाहिए।

4. केंचुआ स्राव इकाई को ऐसे स्टेन्ड पर रखना चाहिए जिससे स्रावित द्रव को आसानी से इकट्ठा किया जा सके।

केंचुआ स्राव की लाभकारी उपयोगिताः

केंचुआ स्राव के धान्य फसलों में प्रयोग अत्यन्त लाभकारी प्रभाव होता है। इसका प्रयोग भिंडी, पालक, बैंगन, प्याज तथा आलू जैसी सब्जियों वाली फसल का स्वाद और उनकी गुणवत्ता को बढ़ाने का काम करता है। यह पूर्ण जैविक उत्पाद है। इसके प्रयोग से उत्पादित कृषि उपजों का दाम रासायनिक खादों और कीटनाशियों के प्रयोग से उत्पादित कृषि उपजों की अपेक्षा अधिक गुणवत्ता युक्त होता है, जिसके कारण इसकी कीमत अधिक मिलती है।

OOO

6

'जीका' विषाणु

टी. डी. जोशी

'जीका' वाइरस का जंजाल,
इससे ब्राजील हुआ बेहाल।
शेष विश्व को भी यह खतरा,
आओ देखें इसका पतरा।
'जीका' अफ्रीका के जंगल का नाम,
जहाँ वाइरस की हुई पहचान।
तभी पड़ गया 'जीका' नाम,
भयानक हैं इसके परिणाम।
सात दशक पहले की बात,
लँगूर था एक 'रीसस मकाक'।
होता था इसे पीत बुखार,
कैसे हो इसका उपचार?
होने लगा जब इस पर शोध,
तभी हुआ 'जीका' का बोध।
संक्रामक घटक 'जीका' कहलाया,
'ई. ए. वी. आर आई' ने पता लगाया।
जो मच्छर 'डेंगू' ज्वर फैलाता
'एडीज एजिप्टाई' वह कहलाता।

यही मच्छर 'जीका' का करे प्रसार,
दिन और रात यह करे शिकार।
'फ्लेविविरिडिएसी' है परिवार विषाणु का
इसी का सदस्य है वाइरस 'जीका'।
गर्भस्थ शिशु में भी यह फैले,
भ्रूण के मस्तिष्क पर हमला बोले।
शिशु के सिर में विकार आता,
सिर शिशु का छोटा हो जाता।
यह स्थिति 'माइक्रो सिफेली' कहलाती,
इससे 'न्यूरोलौजिकल' समस्या आती।
माइक्रो सिफैली जन्मजात भी हो सकता है
जन्म के बाद भी हो सकता है।
'गिलैन बारे सिंड्रोम' रोग भी 'जीका' फैलाता,
तंत्रिका तंत्र में यह घात लगाता।
'गिलैनबारे सिंड्रोम' के हैं यह लक्षण,
कमजोरी और पैरो में झनझन।
'जीका' के लक्षण लगभग वैसे,
'डेंगू' के लक्षण होते जैसे।

सिरदर्द, जोड़ों में दर्द, आँखें लाल,
त्वचा में धब्बे और बुखार।
'जीका' का नहीं कोई इलाज,
सावधानी ही है उपचार।
संक्रमण में हो खूब आराम,
तरल पदार्थ लें सुबह व शाम।

चिकित्सक की राय जरूरी है,
मच्छरों से बनानी दूरी है।
भारत में अभी नहीं है खतरा,
सजग तो फिर भी, होगा रहना।
दूर हो जग से 'जीका' का जंजाल,
सभी सुखी हों सभी खुशहाल।

OOO

7

अकाष्ठ वन उपज / उत्पाद – एक भारतीय परिप्रेक्ष्य

डॉ. नवीन कुमार बोहरा

भारत को (उष्टकटिबंधीय, शीतोष्ण, समशीतोष्ण एवं अल्काइन) सभी प्रकार की वनस्पति का आशीर्वाद मिला है। इसकी गिनती व्यापक पर्यावरणी व्यवस्था एवं विभिन्न जैविक समुदायों की उपस्थिति के कारण विश्व के 12 वृहत् (मेगा) विविधता वाले क्षेत्रों में होती है। विश्व में मिलने वाले लगभग 425 पुष्पीय कुलों में से 328 कुल तथा 21000 जातियां भारत में पाई जाती हैं। इसमें अकाष्ठ वन उपज (NWFPS) लगभग 2000 से अधिक जातियों में पाई जाती है। राष्ट्रीय वन नीति 1988 के बुनियादी उद्देश्यों में राष्ट्रीय वनस्पति एवं जीव शामिल हैं। ये ग्रामीण एवं कबाइली आबादी की जरूरतों को पूरा करने तथा सभी वनोपजों के कुशल उपयोग को प्रोत्साहित करते हैं। नीति के अनुसार अकाष्ठ वन उपज को (जो स्थानीय समुदायों को जीविका प्रदान करते हैं) संरक्षित एवं बेहतर बनाना चाहिए। यह संरक्षण और वन संसाधनों के प्रबंधन में एवं अनुसंधान के लिए आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी तरीकों के आवेदन के माध्यम से उत्पादकता में वृद्धि प्रदान करता है।

पत्तियाँ : –

- "डाइस्पाईराज मेलानोजाइलॉन" – इसे साधारणतः "तेंदू" कहते हैं। आंध्र प्रदेश में इसे "एबनस", उडीसा एवं प. बंगाल में "केन्डू", गुजरात में "टेम्ब्रू", केरल में "कारी", महाराष्ट्र में "टेम्बूरनी" तथा तमिलनाडु में "बाली टप्रा" कहा जाता है। इसकी पत्तियां तंबाकू के रैपर पर लगाकर "बीड़ी" बनाने के काम में लाई जाती हैं। यह जाति मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु तथा पश्चिमी बंगाल में प्रचुर मात्रा में मिलती है। इसकी उपज आमतौर पर, शुष्क मिश्रित पर्णपाती वनों में होती है तथा शोरिया रोबस्टा (साल) एवं टेक्टोना ग्रान्डिस (सागवान) के पास उगता है। भारत में हर वर्ष 300,000 टन बीड़ी पत्ती का उत्पादन वार्षिक होता है, जिसका 85 प्रतिशत मध्यप्रदेश, उडीसा, महाराष्ट्र एवं आंध्रप्रदेश से प्राप्त होता है। राजस्थान का तेंदू पत्ती संग्रहण में छठा स्थान है।

• **बोहीनिया वाहलिआई**:– इसे उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में "माहुल" तथा पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा में "सिआली" के नाम से जाना जाता है। इसकी पत्तियां खाना पैक करने एवं कप तथा प्लेट बनाने में काम आती है। यह जाति वनों में स्वाभाविक रूप से बढ़ती है। इसको पुनर्जीवित करने के प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। इसे सामान्यतः खरपतवार माना जाता है, क्योंकि यह स्वस्थ वृक्षों के ऊपर फैलकर उन्हें नष्ट करती है। यह प्रजाति उपहिमालय क्षेत्र में समुद्र स्तर से ऊपर 3000 मीटर तक तथा असम, केंद्रीय भारत, बिहार और पूर्वी एवं पश्चिमी घाट तक पाई जाती है। इसकी पत्तियों का वाणिज्यिक संग्रहण आंध्रप्रदेश, उड़ीसा एवं मध्यप्रदेश में होता है। इसकी पत्तियों का मूल्य उपलब्ध नहीं है। मध्यप्रदेश में लगभग 78 टन पत्तियां एकत्र की जाती हैं जिसका मूल्य लगभग 20 लाख रुपये है। उडीसा में लगभग 160 टन से ज्यादा सूखी पत्तियां एवं 86 मिलियन पत्ती प्लेट्स चिन्हित किये गए हैं।

बांस:– बांस की 100 से अधिक जातियां भारत में पाई जाती हैं। इनमें से बैम्बूसा ऐसन्डीनोसिया, बैम्बूसा टुल्डा, बैम्बूसा पॉलीमौरफा, डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस, डेन्ड्रोकेलेमस हमिलटोनाई, मैलाकैना बेसीफेरा एवं औएकलेन्ड्रा ट्रेविनकोरिका उपलब्धता की दृष्टि में महत्वपूर्ण जातियां है। डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस एवं बैम्बूसा ऐसन्डीनासिया आर्थिक दृष्टिकोण से दो प्रमुख जातियां है। बांस प्रकाशग्राही, सीधे एवं मजबूत होते हैं। ये खोखले परंतु कठोर होते हैं तथा इन पर कार्य करना आसान होता है। ये कई आकारों में आते हैं तथा इनमें लंबे तंतु पाए जाते हैं। इन सभी विशेषताओं के कारण बांस को अत्यधिक बहुप्रयुक्त माना जाता है।

गोंद एवं रेजिन:– गोंद पारदर्शी, आकारहीन पदार्थ है जो काष्ठीय जातियों की कोशिका भित्ति के अपघटन से बनने वाला उत्पाद है। ये वृक्षों से अनायास ही निकलते हैं तथा पानी में घुलनशील होते हैं। रेजिन भी पेड़ों से निकलते हैं परंतु ये पानी की जगह ऐल्कोहॉल में विलयशील होते हैं। गोंद से संबंधित गोंद–रेजिन भी पौधों से उत्पादित होते हैं। गोंद–रेजिन दोनो पानी में पूर्णतया विलयशील नहीं होते हैं। रेजिन सामान्यतः अधिक मात्रा में आवश्यक तेल के साथ मिश्रित रूप से पाए जाते हैं जिन्हें ओलियो–रेजिन कहते हैं। जब ओलियो–रेजिन के साथ गोंद भी मिलता है तो उन्हे गोंद ओलिया–रेजिन कहते हैं जो *बोसविलिया सिरैटा* (सालर) के वृक्ष में पाए जाते हैं।

भारत में पाईनस रॉक्सबरगाई में सर्वाधिक मात्रा में ओलियो–रेजिन पाया जाता है। वृक्षों के तने पर ब्लेड द्वारा नाल बनाकर ओलियो–रेजिन का प्रवाह इन रॉल नालों से प्राप्त किया जाता है। परंपरगात रूप से ओलियो–रेजिन कप एन्ड लिप विधि द्वारा मार्च से नवंबर की शुरुआत तक प्राप्त किया जाता है। नाल विधि यद्यपि अधिक वैज्ञानिक पद्धति है परंतु प्रायोगिक रूप में फील्ड में उपयोगी नहीं पाई गई है। ब्लेज को अम्ल या 2–4 डी विलयन द्वारा उपचारित करती रेजिन का प्रवाह अधिक समय तक प्राप्त करने की रिपोर्ट मिलती

है। इसकी उपज जून में सर्वाधिक होती है जब सूर्य सबसे गर्म होता है। कप में एकत्र ओलियो–रेजिन को हर बार कप के भरने पर बड़े पात्रों में स्थानांतरित कर दिया जाता है। इन पात्रों को बाद में कारखानों में प्रसंस्करण हेतु ले जाया जाता है।

सलाई गोंद (गोंद ओलियो–रेजिन) बोसविलिया सिरेटा वृक्ष के दोहन से प्राप्त उत्पाद है। ताजा स्राव को रेजिन कनोल से पंक्चर कर निकाला जाता है जिसमें 5–8 सेमी लंबे कटाव बनाए जाते हैं। यह 4 दिन में सूखकर कड़ा हो जाता है। इसमें दोहन कार्य नवंबर से जून तक किया जाता है। इसी प्रकार के उत्पादों में, *अकेशिया निलोटिका* (गम अरेबिक) एवं अन्य अकेसिया जातियों तथा *अकेशिया कटेचू, अकेशिया मोडस्टा* एवं *अकेशिया सेनेगेल* से प्राप्त गोंद को सामूहिक रूप से अकेशिया गोंद के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। गम करैया या कटीरा, स्टरकुलिया यूरैन्स से तथा ओलियो रेजिन *पाइनस रॉक्सबरगाई* के दोहन से अधिक मात्रा से प्राप्त कर वाणिज्यिक महत्व के उत्पाद के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। हर वर्ष *पाइनस रॉक्सबरगाई* से 46000 टन ओलियो रेजिन प्राप्त किया जाता है जिसका मूल्य लगभग 2.8 मिलियन रुपए से भी अधिक होता है।

तेलीय बीज– भारत में लगभग 86 विभिन्न प्रकार के तेल बीज देने वाली वृक्ष जातियां है। काफी पर्याप्त मात्रा में तेल बीज, *शोरिया रोबस्ता* (साल), *मधुका इंडिका* (महुआ), *मैगीफैरा इंडिका* (आम), *गारसीनिया इंडिका* (कोकम), *ऐंजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम), *पौगामिका ग्लेवरा* (करंज), साल्वेडोरा ओलिओइडिस एवं *साल्वेडोरा परसिका* (जाल) आदि से प्राप्त किया जाता है। साल बीजों का संग्रहण एवं विपणन, व्यवसायिक रूप में किया जाता है। इसका संभावित उत्पादन लगभग 5.5 लाख टन हो रहा है जिसका बाजार मूल्य लगभग 200–250 मिलियन है। इसी प्रकार महुआ की वार्षिक बीज उत्पादन क्षमता 1.1 मिलियन टन है परंतु वास्तव में उत्पादन मात्र 25000 टन ही है तिसका बाजार मूल्य लगभग 17 मिलियन रुपए है। अन्य जातियों के उत्पादों एवं उनके व्यापारीकरण पर कार्य चल रहा है।

सगंध तेल:– इन्हें वाष्पशील तेल भी कहा जाता है जो एक सुखद स्वाद एवं मजबूत सुरभित गंध देते हैं। ये लगभग 60 पादप कुलो में पाए जाते हैं तथा मुख्यतः लेवियेटी, रूटेसी, जिरेऐसी, अम्बलीफेरी, एस्टरेसी, लौरेसी, ग्रेमिनी एवं फेबेसी कुलों में सामान्यतः प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। पादप का कोई भी भाग इन आवश्यक तेलों का स्रोत हो सकता है। इनका उपयोग इत्र, साबुन एवं अन्य प्रसाधन सामग्रियों को बनाने में किया जाता है। कुछ पदार्थों का प्रयोग टूथपेस्ट बनाने के लिए किया जाता है क्येंकि इन संगध तेलों में चिकित्सकीय एवं जीवाणुरोधी गुण होते हैं। कुछ अन्य का प्रयोग पेन्ट एवं वार्निश उद्योगों, कीटाणुनाशियों, वातावरण शुद्धिकारक उत्पादों के रूप में तथा सुगंध एवं विभिन्न सुवास बनाने में किया जाता है

भारत में उत्पादित महत्वपूर्ण आवश्यक तेल, चंदन का तेल, लेमनघास तेल, पामरोजा तेल, सफेदा, खस एवं अंरडी का तेल है। इन तेलों का

अन्य वसीय तेलों से उनके हवा के संपर्क में आने पर वाष्पीकरण हो जाने के गुण के कारए इन्हें अन्य तेलों से अलग पहचाना जा सकता है। तेलीय भागों को प्रायोगिक क्षेत्र से एकत्रित कर विभिन्न तरीकों से तेल निकाला जाता है जो इनकी मात्रा एवं स्थिरता पर निर्भर करता है। भारत में लगभग 2830 टन संगध तेलों का उत्पादन होता है।

रेशे एवं रुईः– रेशे को तीन प्रकार की श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है – नर्म, कठोर एवं सतही रेशे। नर्म रेशे सामान्यतः पौधे के तनों और पत्तियों से तथा सतही रेशे तना, पत्ती अथवा बीजों की सतह आदि से प्राप्त किए जाते हैं। इनके सामान्य उपयोग के आधार पर इन्हें कपड़ा रेशे, ब्रश रेशे, बुनाई–कटाई वाले रेशे, भरने वाले रेशे, प्राकृतिक कपड़े एवं कागज बनाने वाले रेशे आदि में श्रेणीकृत किया गया है। भारत के वनों में मिलने वाले महत्वपूर्ण रेशे मुख्यतः बोम्बेसी, स्टरकुलिएसी, टिलिएसी, फेबेसी, एस्कलीपिडेसी, मिरटेसी, मोरेसी, अर्टिकेसी, पामेसी, मूसेसी एवं ग्रैमिनी (घास) कुलों से प्राप्त होते हैं। महत्वपूर्ण कुटीर उद्योगों में प्रयुक्त जातियाँ हैं – *ऐगेव सिसलाना, एवरोमा ऑगस्टा, एबुटिलान, एनानास कॉसमोसस, एनटिएरिस टोक्सीकेरिया, बोह मेरिया निविया, वोरारस फ्लेबी लीफर, कैनाविस सटाइना, कोर्डिया डाइको टोमा, कोर्डिया रोथी, गिरडिनिया हिटरोफिला, ग्रेविया ग्लेबरा, ग्रेविया, ग्रेविया डाइकोटोमा, ओपटिवा, हिबिसकस जाति, मेलाक्रा केपिटेटा, मारसीडिनिया टेनासीसीमा, मारसीडिनिया वोल्यमबिलिस, फोरमीय टेनेक्स, सेनसीविएरा रॉक्सबरगिनिया, सेसाविनिया, वाइस्पाइनोसा, साइडा राम्बीफोलिया, स्टरकुलिया फोइटिडा, स्टरकुलयर यूरेन्स, स्टरकुलिया विलियोसा, थेमेडा ऐरून्डीनेसिया, ट्रीमा ओरिएनटैलिस, टाइफा ऐलिफन्टाइना, यूरिना लोवेटा, ओरियोनाईड इन्टीग्रीफोलिया* आदि। एक अनुमान के अनुसार भारत में ऐग्रेव जातियों से लगभग 2500 टन वार्षिक उत्पादन रेशे का होता है जिसका वर्तमान मूल्य 45 लाख से अधिक है। इसी प्रकार की अन्य जाति *स्टरकुलिया विलियोसा* के कुल उत्पादन के आंकडे उपलब्ध नहीं हैं।

रुईः– यह जंगली फलों से प्राप्त होती है। महत्वपूर्ण जातियां है– बोम्बेक्स सीवा एवं शीबा पेन्टेनड्रा। *बोम्बेक्स सीवा* से रुई इसके कैपसूल से प्राप्त होती है तथा इसे भारतीय रुई कहते हैं। यह रुई नर्म एवं मजबूत होती है तथा इसका प्रयोग, नौकाओं के लिए जीवन रक्षक उपकरण बनाने, तकियों में एवं गद्दों के कुशन के रूप में, थर्मल इनसुलेशन में एवं दीवारों को आवाजरोधी बनाने में होता है। यह गद्देदार **सर्जिकल ड्रेसिंग** हेतु सर्वाधिक पसंदीदा सामग्री है। रुई का भारत में वार्षिक उत्पादन लगभग 300 टन होता है।

घासः– कागज बनाने में, पशु चारे के रूप में, चटाई, रस्सी बनाने में एवं फर्नीचर, टोकरी आदि में घासों का प्रयोग होता है। घासों के विभिन्न उपयोग इस प्रकार हैंः–

(i) कागज बनाने वाली घासेंः–

यूलालिओपसिस बाइनैटा (सवाई घास) इस हेतु मुख्य जाति है जो उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब एवं हिमांचल प्रदेश में पाई जाती है।

(ii) चारा हेतु घासेंः–

ऐंड्रोपेशाने भारत के शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली मुख्य चारा घास है। इसके अतिरिक्त *सैकस सिलिएरिस, ब्रोथीरोक्लाआ इश्चियम, ब्रोथीरोक्लाआ परटूसा* एवं *ब्रोमस* जाति आदि भी जंगली क्षेत्रों में पाई जाने वाली चारा घासें हैं।

(iii) चटाई हेतु घासेंः–

फ्रेगमाइट जाति एवं एरून्डो जाति की कलमों को विभाजित कर चटाई बनाई जाती है। *सैकम मून्जा, टाइफा ऐलिफेन्टाइना* एवं *साइप्रम कोरीम्बोसस* भी उपयोगी हैं।

(iv) रस्सियों हेतु घासेंः–

यूलालिओपसिसे बाइनेटा, डेस्मास्टोकिया बाइपिनैटा, सैकम मून्जा, सैकम स्फोनटेनियम एवं *घेमडा ऐकन्डीनोशिया* रस्सियों हेतु प्रयुक्त की जाने वाली मुख्य जातियां हैं। इसी प्रकार पैकिंग हेतु *इम्पीरेटा सिलेन्डीका* एवं *सैकम* जतियां तथा *हिट्रोपैगान कोनटोरटस* प्रयुक्त की जाती हैं।

(v) विविध उपयोगों हेतु घासेंः–

सैकम मूंजा के तनों से फर्नीचर बनाया जाता है। *वेटिवर जिजेनोइसिस* की जड़ों से बनी स्क्रीन का प्रयोग गर्मी मे घरों, ऑफिस में ठंडक बढाने हेतु कूलरों में किया जाता है। इसी प्रकार *थाइसेनोलेना मैक्सिमा* घास का प्रयोग झाडू एवं चारे के रूप में भी किया जाता है।

टैनिन एवं रंजकः– टैनिन मुख्यतः बहुफिनोलिक यौगिक है जो भारतीय वनस्पति जगत् में सर्वत्र पाए जाते हैं। ये विभिन्न पादपो में भिन्न–भिन्न सांद्रता में पाए जाते हैं। इनमें कुछ पौधों से वाणिज्यिक रूप में इनके दोहन की अनुमति है। विश्व में उत्पादित 90 प्रतिशत कुल वानस्पतिक टैनिन का प्रयोग चमड़ा उद्योग द्वारा किया जाता है। *टर्मिनेलिया चेबुला* जिसे वाणिज्यिक रूप में "चबुला हरड" के नाम से जाना जाता है, का फल मुख्य रूप से टैनिन हेतु प्रयुक्त होता है। चबुला हरड़ का वृक्ष मिश्रित–पर्णपाती वनों एवं शुष्क जंगलों में पाया जाता है। यह "पापरोगेलोल" प्रकार का टेनिन पदार्थ है। भारत में *अकेसिया निलाटिका* एवं *केसिया ओरिकूलेटा* टेनिन के साथ संयोजन द्वारा इसका बड़े पैमान पर उपयोग किया जाता है। हरड़ नट का वार्षिक उत्पादन लगभग 78,000 से 100,000 टन होने का अनुमान है।

रंग / रंजकः– लगभग 2000 पादप रंजकों में से मात्र कुछ ही वाणिज्यिक महत्व से उपयोगी हैं। वस्तुतः हाल ही के वर्षों में वानस्पतिक रंग, कृत्रिम रंगों की तुलना में सफल नहीं हुए है। ये निम्न प्रकार से प्राप्त होते हैंः–

(1) लकड़ी रंजकः– *अकेसिया कटैचू* से कत्था रंजक एवं *आरटोकार्पस हिट्रोफाइल्स, आरटोकार्पस लैकूचा, टेराकार्पस सेनटेलिनस* एवं *सीजलपिनिया सपान* से रंजक प्राप्त होते हैं।

(2) छाल रंजकः– *टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा, अकेसिया कोनसिना, अकेसिया फारनेसियाना, अकेसिया ल्यूकोफोलिया,* एलनस जाति, *केजुराईना इक्वीसिटीफोलिया, मानीकारा लिटोरोलिस, माइरिका एसइलेन्टा* एवं *वेन्टीलेगो मेड्रास्पाटाना* आदि की छाल से रंजक प्राप्त होता है।

(3) पुष्प एवं फल रंजकः– यह प्राकृतिक रंजकों का सबसे महत्वपूर्ण समूह है। सामान्यतः *मेलोऊटस फिलिपेनसिस, कुडफोर्डिया फ्लोरीबुन्डा, विक्सा ओरिलेना, ब्यूटिया मानास्पर्मा, टूना सिलिएटा, निक्टेनथिस आरबोट्रिस्टीस, मैमिया लोंगियाफोलिया, रिगटिया टिक्टोनिया एवं केराक्स स्टेटीक्स* से पुष्प एवं फल रंजक प्राप्त होते है।

(4) जड़ रंजकः– *वारनेरिस एरिसटेटा, डेटिओका कैनाबिना, मोरिन्डा टिन्क्टोरिया, पुनिका ग्रेनेटम* एवं *रूबिया कोरडीफोलिया* की जड़ों से रंग प्राप्त होता है।

(5) पत्ती रंजकः– *इंडिगोफेरा टिन्कटोरिया* एवं *लेसोनिया इनरमिस* पत्ती रंजक हेतु महत्वपूर्ण जातियां हैं।

औषधि एवं मसालेः– भारत के औषधीय पौधों के वन में लगभग 1500 जातियां है। इन पौधों के औषधीय गुणों का ज्ञान "मेटेरिया मेडिका" नामक देशी चिकित्सा प्रणाली में दर्ज है जो सदियों से एक परंपरागत औषधीय गुणों वाले पादपों से संबंधित है। भारत के हर क्षेत्र ने इसमें अपना योगदान दिया है।

मसालाः– मसाले खुशुबूदार, जायके एवं मीठा/कड़वा स्वाद वाले सुगंधयुक्त (ऐरोमैटिक) पादप उत्पाद हैं। ये जंगलो में प्राकृतिक रूप से पाए जाते हैं तथा इनकी कृषि भी कुछ क्षेत्रों में की जाती है। कुछ महत्वपूर्ण मसाले उत्पादन करने वाले पादप हैं – *एलपिनिया ग्लैनगा* (ग्रेटर गेलेनगल), *सिनेमोमम जिलेनिकम* (दालचीनी), कुरकुआ जाति (हल्दी), *इलीटोरिया कारडोमोमम* (इलायची), *पाइपर लोनगम* एवं *पाइपर नाइगम* (मिर्च) आदि।

पशु उत्पादः– लाख, शहद, मोम, सिल्क, हींग, खाद, पक्षियों के घोंसले, मक्खियों से प्राप्त वन उत्पाद इस श्रेणी में आते हैं। इनमें महत्वपूर्ण हैं–

(1) लाखः– आमतौर पर इसे अपने परिष्कृत रूप में चपड़ा के रूप में जाना जाता है। यह लाख कीट *"लेसीफेरा लेका"* की शल्य से तब स्रावित होता है जब वह पौधों को खाता है। लाख का प्रयोग वर्तमान में प्लास्टिक, इलेक्ट्रिक उत्पादों, चिपकाने वाले पदार्थों, चमड़े, लकड़ी की फर्निशिंग, मुद्रण कार्य, पॉलिश एवं वार्निश, स्याही एवं विभिन्न प्रयोजनों के लिए किया जाता है। यह मुहर लगाने वाले मोम का भी प्रमुख घटक है। भारत में लगभग 14,500 से 20,000 टन लाख का उत्पादन होता है।

(2) शहद एवं मोमः शहद एक प्राकृतिक पौष्टिक भोजन है। इसे औषधीय प्रयोजनों हेतु भी व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है। इसकी दो जातियां *ऐपिस डोरसेटा* (रॉक मधुमक्खी) एवं *एपिस इंडिका* (भारतीय मधुमक्खी) शहद का उत्पादन करती है। प्रथम जाति भारत के पर्वतीय एवं उप–पर्वतीय क्षेत्रों में मिलती है तथा अच्छी मात्रा में शहद उत्पादन करती है। एक छत्ते से 35 किलोग्राम तक शहद एवं मोम उत्पादन हो सकता है। दूसरी जाति मधुमक्खी पालन हेतु उपयुक्त है परंतु यह कम शहद का उत्पादन करती है। इससे 3–13 किलोग्राम

तक शहद पहाड़ी क्षेत्रों में एवं 3 से 8 किलोग्राम तक मैदानी क्षेत्रों में प्राप्त किया जा सकता है। मधुमक्खी के मोम का प्रयोग फर्नीचर एवं फर्श की पॉलिश में, तथा चमड़े की वस्तुओं के जलरोधीकरण में किया जाता है। यह जूता पॉलिश, सौंदर्य प्रसाधनों, लिपस्टिक एवं चेहरे की क्रीम आदि का घटक भी है। मोम का वार्षिक उत्पादन 28 टन है।

रेशम सिल्कः– भारत में चार प्रकार के रेशम का उत्पादन होता है यथा मलबरी, टसर, मूंगा एवं इरा सिल्क। यह रेशम के कीड़ों से प्राप्त किया जाता है। टसर सिल्क का वार्षिक उत्पादन 130 टन एवं अन्य प्रकार के रेशम का उत्पादन लगभग 10,000 टन से अधिक प्रतिवर्ष होता है।

खाद्य पादप उत्पादः– प्राकृतिक वनों से मनुष्यों के लिए वैकल्पिक खाद्य सामग्री प्राप्त होती है। अनेक जंगली फल एवं बीज, पुष्प राइलोम, टयूबर, जड़, छाल आदि का सेवन लोगों द्वारा खाद्य पदार्थो की कमी के दौरान किया जाता है। फलों के रूप में *बुचनेनिया लेनजन* (चिरोंजी), *ऐनाकार्डियम ऑक्सीडेन्टेल* (काजू), *पाइनस जिराडियाना* (चिलगोजा), *ऐमब्लिका ऑफीसनेलिस* (आंवला), *टेमेरिन्ड इंडिका* (इमली), *ऐगल मारमीलो* (बेल), *फेरोनिया ऐलिफेंटम्* (कैथा), *आरटोकार्पस लेकूचा* (बरहाल), *साइजिनियम क्यूमिनी* (जामुन), *जैफरूरांर* (शरीफा), *केरीसा ओपेका* (करौदा), *जुगलेन्स रीजिया* (अखरोट), *मोरिंगा ओलीफेरा* (ड्रमस्टिक) *जिजिफस जुजूबा* (बेर) आदि प्रयुक्त होते हैं। खाद्य पुष्प *मधुका इंडिका* एवं *मधुका लोगीफोलिया* के खाए जाते हैं। जड़ तथा टयूबर के रूप में *एमोरफोफेलस कैम्पेनूलेटम, डायोस्कोरिया बेलोफाइला, डायोस्कोरिया अपोजिटीफोलिया* एवं *आइपोमिया ऐक्वेटिका* महत्वपूर्ण हैं।

वर्तमान स्थिति में अनेक अकाष्ठ वन उपजों को पूर्ण रूप से समझा नही जा सकता है। इन उत्पादों का अंतरराष्ट्रीय बाजार में एक महत्वपूर्ण स्थान होने तथा सुविधाओं के विकास से नियमित आय बढ़ाने के लिए, सुखाने, भंडारण, पैकेजिंग, विपणन एवं प्रसंकरण के लिए उपयुक्त है। सर्वेक्षण एवं अकाष्ठ वन उपज पौधों के प्रलेखन की तत्काल जरूरत है। स्थानीय निवासियों द्वारा उपयोग के तरीकों, उन जातियों की बाहरी आकारिकी को जानने आदि की जरूरत है। यद्यपि ये तथ्य आवश्यक हैं परंतु इनकी व्यवस्थित स्थिति का अध्ययन अभी नहीं किया गया है।

ООО

8

'मछली: जो मछली नहीं

डॉ. सी. पी. सिंह

ह्वेल: ह्वेल एक मछली न होकर स्तनधारी समुद्री प्राणी वर्ग का सदस्य हैं इसका भार लगभग 150 टन तक होता है।

जेलीफिशः जेलीफिश मछली नहीं वरन संघ सीलेन्ट्रेटा के एक समुद्री सदस्य 'औरेलिया' का व्यावहारिक नाम है। इसके शरीर का अधिकांश भाग जेली से बना होता है।

सिल्वरफिशः (मत्स्यंक) जिसे सामान्यतः 'पुस्तक जूं' यानी पुस्तकों इत्यादि की गोंद को खाने वाला कीट माना जाता है। यह संघ 'आर्थोपोडा' का सदस्य है। जिसका वैज्ञानिक नाम लेपिस्मा है।

कटलफिशः (सुफेनक) कटल–फिश मछली नहीं, अपितु संघ–मोलस्का का एक समुद्री सदस्य 'सीपिया' है। यह मछली झींगा, केकडे आदि खाती है।

क्रेफिशः (प्राचिंगट) क्रे–फिश मछली न होकर संघ– आर्थोपोडा के समुद्री झीगों का व्यावहारिक नाम है।

स्टारफिशः (तारा–मीन) मछली नहीं, बल्कि संघ–इकाइनोडर्मेटा के समुद्री सदस्य एस्टेरियास का व्यावहारिक नाम है।

डॉल्फिनः यह मछली नहीं, अपितु स्तनधारी वर्ग के सदस्य का व्यावहारिक नाम है। इसका मुँह चिड़िया की चोंच की तरह होता है।

डेविल–फिशः (शृंगी) डेविल–फिश वास्तविक मछली नहीं, बल्कि संघ–मोलस्का के समुद्री सदस्य "ऑक्टोपस" का व्यवहारिक नाम है।

OOO

9

सूखे ओले और अनावश्यक बरसात से मुक्ति

प्रो. वी. आर मौर्य, श्री जगनारायण

वर्षा के अभाव में आज देश का लगभग 38 प्रतिशत भू–भाग सूखे की चपेट में है। महाराष्ट्र के मराठावाड़ा क्षेत्र का लातूर और उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड के ललितपुर, फतेहपुर, हमीरपुर, महोबा सूखे की मार से बुरी स्थिति में है। इन दोनों स्थानों पर नदी, तालाब और बाँध सूख गए हैं। मनुष्य एक–एक बूंद पीने के पानी के लिए बेहाल है। फसलों की बर्बादी के कारण कृषक लगातार आत्महत्या कर रहे हैं। पानी के अभाव में पशुओं की मौत आम बात हो गई है। लातूर में रेल के डब्बों से पीने का पानी पहुँचाया जा रहा है। बुंदेलखंड की स्थिति अत्यंत दयनीय है। ओलों की मार ने यहाँ के किसानों की कमर पहले से ही तोड़ रखी है।

प्रकृति का यह प्रकोप आधुनिक विज्ञान को खुले आम चुनौती देता नजर आ रहा है। यद्यपि वैज्ञानिकों ने कृत्रिम वर्षा से भारत सहित दुनिया के कई हिस्सों में वर्षा कराने में सफलता पाई है। देश में पड़े इक्कीसवीं सदी के इस भयानक सूखे से लड़ने के लिए कृत्रिम वर्षा समस्या निराकरण में एक उपयोगी संभावना बन सकती है। आवश्यकता है इस दिशा में व्यापक सोच, शोध, विकास और विस्तार की।

कृत्रिम वर्षा की पृष्ठभूमिः कृषि के लिए जल अनिवार्य आवश्यकता है। इसके अभाव में खेती की कल्पना निरर्थक है। जल हमें मुख्य रूप से वर्षा के माध्यम से ही प्राप्त होता है। वर्षा पर अनादिकाल से ही पूरी तरह प्रकृति का नियंत्रण रहा है। प्राचीन काल में मनुष्य अच्छी वर्षा के लिए देवी–देवताओं की पूजा–आराधना, मनौती और यज्ञादिक अनुष्ठानों का सहारा लेता रहा है। आधुनिक काल में वैज्ञानिकों ने वर्षा के लिए उत्तरदायी भौतिक गतिविधियों का अध्ययन कर कृत्रिम साधनों के बल पर वर्षा कराकर जल की प्राप्ति पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास आरंभ कर दिया है।

वस्तुतः मानव के द्वारा प्रकृति को अपने अनुरूप चलाने की प्रवृत्ति, शुरुआती दौर से ही रही है। प्राकृतिक संपदाओं के समुपयोजन या दोहन के

साथ ही खेती का नित बदलता हुआ स्वरूप इसका ज्वलन्त उदाहरण है। अब खेती के लिए मनुष्य ने वर्षा को भी अपनी इच्छा के अनुरूप नियंत्रित करने का प्रयास शुरू किया है। वैज्ञानिकों ने न केवल अपनी जरूरत के अनुसार वर्षा कराने की तकनीक का विकास किया है बल्कि अधिक वर्षा होने की संभावना पर वर्षा को नियंत्रित करने की तकनीक भी खोजी है।

कृत्रिम वर्षा का इतिहास भूगोलः

कृत्रिम वर्षा तकनीक की खोज सर्वप्रथम अमेरिका में हुई। इस वैज्ञानिक प्रक्रिया में वर्षा के लिए उत्तरदायी उपयुक्त पदार्थ को बादलों के भीतर फैलाकर बादलों में नाभिकों या केंद्रकों (न्यूक्लिआइ) का निर्माण किया जाता है। इन केंद्रकों के ऊपर छोटे जल सीकरों (Water Droplets) तथा हिमकणों (आइस क्रिस्टलों) के एकत्रित होने से उनके आकार में वृद्धि होती है। इस क्रिया को मेघ–बीजीकरण कहते हैं। जल की बूँदों और बर्फ कणों की गोलियाँ बनने लगती हैं जो वर्षा के रूप में भूमि पर टपकने लगती हैं। अधिक वर्षा और हिमपात व ओलावृष्टि से बचाव के उद्देश्य से मेघ–बीजीकरण के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले पदार्थ की मात्रा और प्रकृति में फेर बदल करके अनावश्यक वर्षा और हिमपात तथा ओला वृष्टि को भी रोका जा सकता है।

कृत्रिम वर्षा का 'मूल' मेघ–बीजीकरण क्रिया है। इस क्रिया का प्रस्ताव सर्वप्रथम 1946 की जुलाई में विन्सेट शेफर नामक वैज्ञानिक ने किया था। आगे चलकर नोबेल पुरस्कार से सम्मानित इर्विंग लेंगुइमीर के साथ उन्होंने अत्यधिक शीतित बादलों पर प्रयोग किए। अपने इस प्रयोग के दौरान उन्होंने टैलकम पाउडर, नमक, मिट्टी, धूल के कण और कई तरह के अन्य पदार्थों पर प्रयोग किया। ठीक इन्ही दिनों मौसम–वैज्ञानिक वोन्नेगेत ने सिल्वर आयोडाइड का प्रयोग कर मेघों में बीजीकरण की नई तकनीक की खोज कर डाली। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शेफर का तरीका बादलों की उष्मा बजट (ताप की संतुलित मात्रा) में बदलाव पर आधारित था, वहीं वोन्नेगर की खोज क्रिस्टल संरचना बदलाव पर आधारित थी।

अपनी खोज को व्यवहारिक धरातल पर उतारने की प्रक्रिया के दौरान शेफर ने 1946 के 13 नवम्बर को प्राकृतिक बादलों के बीजीकरण का पहला प्रयास किया था। उन्होंने छः पाउंड सूखी बरफ का प्रयोग कर पश्चिमी मैसाचुसेट्स स्थित माउन्ट ग्रेयलोक्क पर हिमपात कराने में सफलता पाई। इस सफलता से उत्साहित होकर उन्होंने आगे प्रयोग जारी रखा। प्रयोग के इस क्रम में उन्होंने केवल छिड़काव के परिणामों पर ही ध्यान केंद्रित रखा था। अनवरत प्रयोग करने के इसी क्रम में वैज्ञानिकों ने उत्तरोत्तर मौसम संबंधी जानकारी तथा तकनीक को और सस्ता बनाने के लिए मेघ बीजीकरण के सही समय, जगह, मात्रा और सफलता/असफलता का विशलेषण करना आरंभ किया। 1950 के दशक में सूखा पीड़ित क्षेत्रों में पानी बरसाने के लिए इस तकनीक का खूब प्रयोग किया गया। लेकिन उस समय सफलता का प्रतिशत

बहुत कम रहा। इसी बीच पर्यावरण और प्रकृति पर इसके प्रभाव को लेकर कई वैज्ञानिकों ने प्रश्न उठाने शुरू कर दिए। व्यापक शोध के अभाव में इस प्रक्रिया के समर्थक वैज्ञानिकों की रुचि में कमी आने लगी। यद्यपि हमारे देश में इस दिशा में कोई खास काम नहीं हो पाया है तथापि आज दुनिया के कई देशों में मेघ बीजीकरण से वर्षा का काम हो रहा है।

मेघ बीजीकरण के प्रमुख साधन तत्वः

मेघ बीजीकरण में साधन के रूप में प्रमुख रूप से सिल्वर आयोडाइड, पोटैशियम आयोडाइड, ड्राई आइस और तरल प्रोपेन जैसे लवणों का प्रयोग किया जाता है, जिसका फैलाव गैस में होता है। इसके साथ ही नमक जैसे आर्द्रताग्राही रसायनों का प्रयोग किया जाता है। मेघ बीजीकरण में सर्वाधिक प्रयोग सिल्वर आयोडाइड का किया जाता है। आणविक स्तर पर सिल्वर आयोडाइड की बनावट बर्फ के बहुत निकट होती है। संभवतः बर्फ जल को संघनित करने या बांधने का काम करता है। बीजीकरण में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों को हवाई जहाजों, विशिष्ट प्रकार के जेनरेटरों अथवा रॉकेट लांचरों के सहयोग से बादलों के बीच पहुंचाया और फैलाया जाता है। ध्यान रहे कि परिस्थितियों के अनुरूप प्रयुक्त पदार्थ के चयन पर ही परिणाम की सफलता निर्भर करती है।

मेघ बीजीकरण की प्रायोगिक तकनीकें:

सामान्यतः मेघ बीजीकरण की दो तकनीकें प्रयोग में लाई जाती हैं जो इस प्रकार हैं:

1. आर्द्रताग्राही (हाइग्रोस्कोपिक) मेघ बीजीकरण
2. हिमजलीय (ग्लेशियोजेनिक) मेघ बीजीकरण

1. आर्दताग्राही (हाइग्रोस्कोपिक) या गतिक (डाइनैमिक) मेघ बीजीकरण– गर्म बादल या क्युमुलोनिम्बस (जो भू सतह से कम ऊँचाई पर बनते हैं) में हाइग्रोस्कोपिक केंद्रक डाले जाते हैं। इसके लिए लिथियम, सोडियम या पोटैशियम के लवणों का प्रयोग किया जाता है। ऐसे बादलों में बड़े केंद्रक जलवाष्प को संघनित और इकट्ठा करने में मदद करते हैं।

2. हिमजलीय (ग्लेशियोजेनिक) या स्थैतिक (स्टेटिक) मेघ बीजीकरण– सामान्य से अधिक ऊँचाई वाले ठंडे बादलों में जल की बूँदे केंद्रकों के ऊपर जमने लगती हैं। ये क्रमशः भारी होने पर आकाश से टपकने लगती हैं। ये मार्ग में पिघल कर वर्षा या हिम कणों का रूप ले लेती हैं। इस प्रकार के बादलों में यदि केंद्रकों की कमी होती है तो उनका बीजीकरण किया जाता है। इसका मुख्य हिमजलीय (ग्लेशिओजेनिक) केंद्रक आयोडाइड और ड्राई आइस है।

कृत्रिम वर्षा की बहुआयामी भूमिकाः

आवश्यकतानुसार पानी की प्राप्ति के लिए कृत्रिम साधनों से वर्षा कराने की प्रक्रिया में बारिश या हिमपात को अन्यत्र स्थानांतरित किया जाना भी संभव है। कई परिस्थितियों में यह काम उपयोगी साबित होता है। दुनिया के कई क्षेत्रों में हुए प्रदर्शनों से स्पष्ट है कि मेघ बीजीकरण मात्र वर्षा कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि इससे बादलों में

इस प्रकार का बदलाव भी संभव है जिससे मौसम में परिवर्तन किया जा सके। इस दिशा में काम करने वाले मौसम वैज्ञानिक तृद स्टोरेमो का कहना है कि साइरस या सिरस श्रेणी का बादल जो पृथ्वी की सतह से 5 से 15 कि. मी. की ऊँचाई पर पाया जाता है उसे इस तकनीक के प्रयोग से पतला और अधिक सफेद बनाया जा सकता है। इससे बादलों के कारण होने वाले वातावरण की गर्मी को नियंत्रित किया जाना संभव है। इससे स्थानीय मौसम में बदलाव की पर्याप्त संभावना होती है। इस विषय में कुछ वैज्ञनिकों का मत है कि इस प्रकार के प्रयोग से बादलों के रंग को हल्का करके सूर्य की रोशनी को इच्छित स्वरूप देकर वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) को किसी सीमा तक कम किया जा सकता है।

कृत्रिम वर्षा के सफल उदाहरणः

1. 2008 में चीन के बीजिंग नगर में आयोजित ओलिंपिक को चीनी सरकार पूरी तरह से निरापद और ऐतिहासिक बनाना चाहती थी। ओलिंपिक के उद्घाटन के समय चीनी मौसम विभाग को भारी बारिश की संभावना थी। इससे निजात पाने के लिए चीन के मौसम विभाग ने 29 अलग–अलग स्थानों से वर्षा वाले बादलों में रॉकेट लांचर्स की मदद से प्रक्षेपित सिल्वर आयोडाइड का फैलाव कर बादलों को बीजिंग पहुँचने से पहले ही बाओडिंग नगर में वर्षा कराकर बीजिंग ओलिंपिक के उद्घाटन कार्यक्रम को बाधारहित संपन्न कराने में सफलता पाई।

2. वर्षा पर नियंत्रण के मामले में हमारे पड़ोसी देश चीन ने कुछ विशेष सफलता का इतिहास रचा है। आज चीन दुनिया के सबसे सफल मौसम नियंत्रण कार्यक्रमों के लिए जाना जाने लगा है। चीन अपने इस प्रकार की कार्य योजनाओं पर प्रतिवर्ष 60 से 100 मिलियन अमेनिकी डॉलर खर्च करता है। इस कार्ययोजना को सफल बनाने के लिए चीन ने लगभग 32000 कर्मचारी नियुक्त किए हैं। ये कर्मचारी मेघ–बीजीकरण के लिए बनाए गए विशेष डिजाइन वाले 35 विमानों और 5000 रॉकेट लांचर सहित अन्य उपकरण संचालित करते हैं। इस विषय में चीनी मौसमविज्ञान संगठन के अनुसार 1999 से लेकर 2006 के बीच अब तक 250 मिलियन टन वर्षा कृत्रिम साधनों से कराई जा चुकी है। चीन में कृषि सुरक्षा के लिए ओला वृष्टि को भी इसी तकनीक से नियंत्रित किया जाता है।

अटलांटिक बेसिन के प्रभंजनो हेरिकेनो पर नियंत्रणः

अमेरीकी सैन्य मौसम अभियान ने 1960 में अटलांटिक बेसिन के प्रभंजनो को नियंत्रित करने के लिए इस तकनीक का प्रयोग किया। इससे कुछ हरिकेनो की प्रवृत्ति में बदलाव अवश्य दिखा लेकिन अप्रत्यशित परिणाम की संभावना को देखते हुए इस परियोजना को स्थगित कर दिया गया।

व्योमिंग के पर्वतों पर हिमपात में वृद्धिः

मेघ बीजीकरण द्वारा अनवरत छः वर्षों तक सिल्वर आयोडाइड के छिड़काव के बाद 2014 में विस्तृत परिणाम के आकलन में पाया गया कि

कृत्रिम माध्यमों से वर्षा अथवा हिमपात में पाँच से पंद्रह प्रतिशत वृद्धि हुई। इस परियोजना पर 14 मिलियन अमेरिकी डॉलर का व्यय आया। इस दीर्घकालिक प्रयोग से प्राप्त परिणामों से वैज्ञानिक खासे प्रभावित हुए और मेघ बीजीकरण को सफल बताया। इस परियोजना के संचालन में "वेदर मॉडिफिकेशन इकार्पोरेशन ऑफ फार्मो" नामक उत्तरी डकोटा की कंपनी की सर्वाधिक भूमिका रही। परियोजना के परिणामों की समीक्षा से कंपनी प्रबंधन इस नतीजे पर पहुँचा कि इस प्रकार का कार्य व्यावसायिक दृष्टि से लाभकारी है। इस प्रक्रिया के दौरान 118 बार मेघ बीजीकरण किया गया। इसमें कई बार छिड़की गई सिल्वर आयोडाइड हवा के बहाव के साथ दूसरी जगहों पर पहुँच जाती थी इसके अतिरिक्त प्राकृतिक और कृत्रिम हिमपात को अलग करना कठिन हो जाता था। इन समस्त समस्याओं को समझकर वैज्ञानिकों को उनके निराकरण की दिशा में पर्याप्त तथ्य प्राप्त हुए हैं।

मेघ बीजीकरण के विवादास्पद परिणामः

शत्रु के विरुद्ध प्रयोग– मार्च 1967 से 1972 तक चले वियतनाम युद्ध के दौरान अमेरिकी सेना ने सिल्वर आयोडाइड का प्रयोग कर हो ची मिन्ह के रास्ते में बाढ़ पैदा कर दी। इससे अमेरिका को विवादास्पद स्थिति का सामना करना पड़ा।

रैपिड सीटी में बादल का फटना– 1972 में बादल फटने के कारण 200 से ज्यादा लोग मारे गए। इस दुर्घटना के लिए बादल फटने से पहले किए गए मेघ बीजीकरण को जिम्मेदार माना गया हालांकि इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिला।

भारत में कृत्रिम वर्षा का प्रयोगः

1951 में टाटा कंपनी की ओर से मेघ बीजीकरण से संबंधित कुछ प्रयोग पश्चिमी घाट पर आजमाए गए। इस परिप्रेक्ष में सी.एस.आई.आर. नई दिल्ली की ओर से 'रेन ऐन्ड क्लाउड फीजिक्स रिसर्च यूनिट' के गठन का प्रस्ताव पारित हुआ। आगे चलकर यही प्रस्ताव 'इन्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मेट्रोलॉजी' का अंग बना गया। 1956 से यह संस्थान देश के अनेक क्षेत्रों में कृत्रिम वर्षा के लिए मेघ बीजीकरण का काम करता चला आ रहा है। 1983 से 87 के बीच तमिलनाडु में पड़े सूखे से बचाव में इस तकनीक का प्रयोग किया गया। 2003–04 में कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्यों में भी इसका प्रयोग किया गया। प्राकृतिक वर्षा पर अवलंबित भारतीय कृषि के लिए देश में कई कंपनियाँ इस दिशा में काम करने की इच्छुक हैं।

ध्यान रहे कि तमाम वैज्ञानिक विकास और प्रयास के बावजूद, आज भी भारतीय कृषि पूरी तरह वर्षा पर ही अवलंबित है। भारत में वर्षा तीन महीने के मौसम में मात्र एक से डेढ़ महीने में ही आधे से ज्यादा पूरी हो जाती है। वर्ष का शेष भाग सूखे वाला होता है। ऐसे कृषि–प्रधान भारत की खेती के लिए वर्ष के शेष भागों में जल की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। अतः परिस्थितियों के मद्दे नजर इस तकनीक पर व्यापक शोध की अनिवार्य आवश्यकता महसूस होती है।

कृत्रिम वर्षा या मेघ बीजीकरण से नुकसानः

यद्यपि मेघ बीजीकरण मौसम परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके दुष्परिणामों के संबंध में

अभी बहुत कम जानकारी है। वैज्ञानिक इस क्रिया में प्रयुक्त होने वाले सिल्वर आयोडाइड जैसे पदार्थों के प्रयोग से वातावरण में अनपेक्षित परिणाम की संभावना भी व्यक्त करते हैं। कुछ वैज्ञानिक अध्येता सिल्वर आयोडाइड के प्रभाव को मनुष्य सहित अन्य जीव धारियों के लिए घातक बताते हैं।

मेघ बीजीकरण प्रक्रिया की योजना के अनुसार न होने अथवा किसी भी अवयव में होने वाले बदलाव से संपूर्ण प्रक्रिया निरर्थक हो जाती है। जिसके चलते आर्थिक क्षति होती है। कुछ वैज्ञानिक मेघ बीजीकरण के लिए सिलवर आयोडाइड की जगह बिस्मथ आयोडाइड को ज्यादा मुफीद मानते हैं। इस संदर्भ में मेरीलैन्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका के वैज्ञानिक झाकिंग ली का कहना है कि यदि सही स्थिति न हो तो मेघ बीजीकरण के द्वारा वर्षा के प्रयास से बादलों से हाने वाली प्राकृतिक वर्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। उनका कहना है कि वायु प्रदूषण के बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न होने वाले एरोसॉलों (सूक्ष्म कणों के बादल) से इस प्रकार के प्रभाव पहले से ही देखे जा रहे हैं।

चूँकि पानी सब की जरूरत है और इसकी कमी विश्वव्यापी है, अतः आधुनिक युग में दुनिया के अनेक देश किसी न किसी रूप में मेघ बीजीकरण के माध्यम से कृत्रिम वर्षा की दिशा में लगातार सक्रिय हैं। इस दिशा में आस्ट्रेलिया, चीन, इरान और यूएसए का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इस दिशा में कुछ कंपनियाँ भी आगे आई हैं। कैलिफोर्निया में कृत्रिम वर्षा तकनीक के माध्यम से प्रति वर्ष चार प्रतिशत अधिक वर्षा जल की प्राप्ति हो रही है। इस प्रकार प्राप्त होने वाले जल की मात्रा 370 से 490 मिलियन घन मीटर के बराबर है। इस प्रक्रिया में प्रति तीन मिलियन यू. एस. डॉलर का खर्च आ रहा है। आज थाइलैंड इन्डोनेशिया, मलेशिया और सिंगापुर जैसे देश तेजी से इस तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं।

यद्यपि मेघ बीजीकरण में शत–प्रतिशत सफलता नहीं मिलती, फिर भी तात्कालिक राहत के लिए इसका प्रयोग बेमानी नहीं है। परिस्थितियों के अनुसार यह सर्वोत्तम विकल्प नहीं है क्योंकि वर्षा अंततोगत्वा मानसून पर ही निर्भर करती है। सर्वकालिक कृषि के लिए जलप्रबंधन सर्वोपरि है। ध्यान रहे कि लाभकारी खेती के लिए एक मात्र वर्षा ही विकल्प नहीं है। अनावृष्टि और सूखा हमारे देश की नियति है। इसके साथ ही इस तकनीक के प्रयोग से भविष्य में बादलों के स्वामित्व को लेकर भी विवाद उपज सकते हैं। अतः तकनीक के व्यापक प्रयोग के समय इन बिंदुओं पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ सकता है।

OOO

10

बढ़ते प्रदूषण का पर्यावरण पर प्रभाव

डॉ. दीपक कोहली

पर्यावरण दो शब्दों "परि" और "आवरण" से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है चारों ओर का आवरण या घेरा। हमारे चारों और जो भी वस्तुएँ, परिस्थितियाँ एवं शक्तियाँ विद्यमान हैं, वे मानव क्रियाकलापों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं एवं उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम "पर्यावरण" की संज्ञा देते हैं। यह दायरा व्यक्ति, परिवार, आवास, गाँव, नगर, प्रदेश, देश, महाद्वीप अथवा संपूर्ण ब्रह्माण्ड का हो सकता हैं। पर्यावरण का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। यह अनेकानेक छोटे तंत्रों से लेकर विशाल विशिष्ट तंत्रों का जटिल सम्मिश्रण है।

Enviornment अर्थात् पर्यावरण शब्द फ्रेंच भाषा के शब्द "Environer" से बना है जिसका अभिप्राय समस्त पारिस्थितिकीय स्थिति अथवा परिवृत्त से होता है। इसके अंतर्गत सभी स्थितियां, परिस्थियां, दशाएं तथा प्रभाव जो कि जैव अथवा जैवकीय अथवा जैवकीय समूह पर प्रभाव डाल रही हैं, सम्मिलित हैं।

मानव जब से जन्म लेता है और जब तक इस धरा पर सांस लेता है, पर्यावरण से जुड़ा रहता है। आंख खुलते ही उसका प्रथम साक्षात्कार पर्यावरण से ही होता है और मरणोपरांत वह इसी पर्यावरण में विलीन हो जाता है। यह क्रम अतीतकाल से अब तक चला रहा है और आगे भी चलता रहेगा। यह इस बात का साक्षी है कि हम पर्यावरण एक दूसरे से चोली–दामन की तरह जुडे हुए हैं। वर्तमान में बढती हुई भौतिकतावादी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य अपनी सुख–सुविधाओं में अधिकाधिक वृद्धि करने के उद्देश्य से प्राकृतिक संपदाओं का अविवेकपूर्ण दोहन कर रहा है, जिससे पर्यावरण का ताना–बाना बिगड़ रहा है। प्रगति की इस अंधाधुंध दौड में हम भौतिक संपन्नता का दावा तो अवश्य कर सकते हैं परंतु स्वस्थ, प्राकृतिक पर्यावरण से सहज मिलने वाले जीवनदायी तत्व कमजोर पड़ते जा रहे हैं।

यदि पर्यावरण स्वच्छ है तो उससे मानव तथा अन्य सभी जीव स्वस्थ्य और सुरक्षित हैं, लेकिन यदि पर्यावरण में किसी प्रकार की अस्वच्छता या प्रदूषण आ जाता है तो इससे जीवन प्रत्यक्ष रूप से

दुष्प्रभावित होता है। पर्यावरण प्रदूषण आज हम सभी के लिए अत्यंत चिंता का विषय है, क्योंकि यह किसी स्थान विशेष या देश विशेष की समस्या न होकर पूरे विश्व की ज्वलंत समस्या है। "अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी" के अनुसार प्रदूषण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है:—

"प्रदूषण जल, वायु या भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाला कोई भी आवांछनीय परिवर्तन है जिससे मनुष्य, अन्य जीवों, औद्योगिक प्रक्रियाओं या सांस्कृतिक तत्व तथा प्राकृतिक संसाधनों को कोई हानि हो या होने की संभावना हो। प्रदूषण में वृद्धि का कारण मनुष्य द्वारा वस्तुओं के प्रयोग करने के बाद फेंक देने की प्रवृत्ति और मनुष्य की बढ़ती जनसंख्या के कारण आवश्यकताओं में वृद्धि है।"

तेजी से बढती हुई जनसंख्या पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण है। विगत सौ वर्षो से बढ़ती हुई आबादी के दबाव में पर्यावरण को बडे पैमाने पर दूषित होते देखा गया है। सन् 1981 में जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 68 करोड 50 लाख थी जो 1991 में बढकर 84 करोड 40 लाख हो गई। यदि यही वृद्धि की स्थिति रही तो वर्ष 2050 तक हम लगभग 175 करोड़ हो जाएंगे। कुल मिलाकर स्थिति अत्यंत शोचनीय है। दिन प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सीमित प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करने में संलग्न है। इसके अतिरिक्त घनी आबादी वाली गंदी बस्तियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। इनमें जगह—जगह फैली गंदगी और कूड़े के ढेर वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं।

प्रदूषण के विष से इस भूमंडल का कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं है, चाहें वह जलीय क्षेत्र हो, स्थलीय क्षेत्र हो या वायवीय क्षेत्र। प्रथम दृष्टि जल क्षेत्र की ओर डालते हैं। जल या पानी जिसके अभाव में इस संसार की कल्पना नहीं की जा सकती है, हमारे शरीर में वजन के अनुसार 60 प्रतिशत होता है। वर्तमान में जल के लगभग सभी स्रोत भंयकर रूप से प्रदूषित हैं। इसके प्रमुख कारकों में घरेलू व्यर्थ पदार्थ, वाहित मल, औद्योगिक अपशिष्ट, कीटनाशी पदार्थ, रेडियोधर्मी तत्व पेट्रोलियम पदार्थ उल्लेखनीय हैं। जो पानी जीवन की रक्षा करता है वही प्रदूषित हो जाने पर बीमारियों तथा मृत्यु का कारण बनता है। विकसित औद्योगिक देश प्रदूषित जल संकट का घोर सामना कर रहे हैं और इसे रोकने के लिए वैज्ञानिक लड़ाई लड़ रहे हैं एवं अरबों डालर खर्च किए जा रहे हैं। विकासशील देशों में मरने वाले पांच बच्चों में से चार पानी की गंदगी के कारण उत्पन्न हुए रोगों से मरते हैं जैसे टायफायड, पेचिश, हैजा, पीलिया, पेट में कीड़े और यहाँ तक कि मलेरिया, जो कि गंदे ठहरे पानी में पाए जाने वाले मच्छरों के कारण होता है। प्रदूषित जल केवल मानव जाति को ही नहीं वरन वनस्पतियों एवं अन्य जंतुओं को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। लखनऊ की गोमती में लखीमपुर चीनी मिल तथा अन्य कारखानों के कारण पानी इतना विषाक्त हुआ है कि मछुआरों के जाल में अक्सर मरी हुई मछलियाँ आती हैं। कानपुर में चमड़ा उद्योग के औद्योगिक अपशिष्ट गंगा को प्रदूषित कर रहे हैं। इसके अलावा आज यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी तथा कृष्णा सहित देश की

प्रमुख नदियों का जल प्रदूषित हो गया है। औद्योगिक प्रदूषण के फलस्वरूप पारे तथा सीसे के यौगिक मछलियों के शरीर में सीधे अथवा उन सूक्ष्म पौधों के माध्यम से पहुंचते हैं, जिन्हें मछलियाँ बड़ी मात्रा में खाती हैं। ऐसी मछलियों के सेवन से मनुष्य के नेत्र और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कनाडाप की कुछ झीलों की मछलियों में पारे की मात्रा इतनी अधिक पाई गई कि वहाँ की सरकार ने इन झीलों की मछलियों के उद्योग पर प्रतिबंध लगा दिया। जापान में इस प्रकार की दूषित मछलियों के खाने से तंत्रिकीय रोग शुरू हो गए।

आइए अब एक दृष्टि अपने वायवीय क्षेत्र की ओर डालें। वायु सभी प्रकार के जीव—जंतुओं एवं वनस्पितियों के लिए अन्यत्र आवश्यक है। मनुष्य बिना भोजन के हफ्तों जी सकता है, बिना पानी के कुछ दिन, लेकिन बिना हवा के कुछ मिनट ही जी सकता है। पृथ्वी के वायुमंडल में 6 लाख अरब टन हवा है। एक सामान्य स्वस्थ्य व्यक्ति एक दिन में 22000 बार सांस लेता है और प्रतिवर्ष 50 लाख लिटर हवा सांस लेकर फेफड़े से बाहर निकाल देता है। आज जिस हवा में हम सांस ले रहे हैं, वह दिन—प्रतिदिन प्रदूषित होती जा रही है। हवा में जब जहरीली गैसें तथा अवांछनीय तत्व इतनी अधिक मात्रा में मिल जाते हैं कि मनुष्य तथा अन्य जीव—जंतु विपरीत रूप से प्रभावित होते हैं तो यह स्थिति वायु—प्रदूषण कहलाती है। प्रदूषित वायु में हानिकारक गैसों का अनुपात बढ़ जाता है। जिससे सिर्फ जैव मंडल ही नहीं अपितु इमारतों आदि को भी नुकसान पहुँचता है। वायु प्रदूषण के प्रमुख कारकों में प्रथम है, इंधनों का जलना। जिनके दहन से कार्बन मोनो ऑक्साइड, कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड अनेक हाइड्रोकार्बन, जैसे बैंजीपाइरिन आदि उत्पन्न होते हैं। परिवहन माध्यमों द्वारा उत्सर्जित धुंआँ, कार्बन कणों, सल्फर डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, लेड कणों आदि के कारण भी वायु निरंतर प्रदूषित हो रही है। औदयेगिक संस्थानों से निकलने वाला धुंआ, अन्य गैसे तथा कणिकामय पदार्थ भी वायु—प्रदूषण के प्रमुख स्रोतों के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार का प्रदूषण महानगरों में अधिक देखने को मिलता है जहाँ अनगिनत छोटे—बड़े कारखाने अपनी चिमनियों के दवारा वायुमंडल में धुएँ के बादल बनाते रहते हैं। इनके अतिरिक्त परमाणु ऊर्जा प्रक्रम एवं तापीय बिजली घरों द्वारा उत्सर्जित पदार्थ भी वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण बनते हैं।

आज अत्यंत प्रचलित शब्द यथा, "ग्रीन हाउस प्रभाव", "अम्लीय वर्षा" एवं "ओजोन परद छेद" वायु प्रदूषण के प्रभाव से ही जनित है। वायु प्रदूषंक विषैली गैसों से साँस की बीमारियां ब्रॉन्काइटिस, फेफडों का कैन्सर आदि बढ़ी हैं। इसके अतिरिक्त सिर दर्द, उल्टी होना, आंखों के समाने अंधेरा छाना अपितु कभी—कभी मृत्यु भी हो जाती है। मनुष्यों के साथ—साथ इन जहरीली गैसों का प्रभाव वनस्पतियों पर भी पडता है। पौधों की पत्तियों में विदयमान "स्टोमेटा" को धूलकण अवरुद्ध कर देते हैं, फलतः पौधों की जीवन—संबंधी प्रक्रियाएं रुक जाती हैं और पौधे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

जीवित पदार्थों के अलावा अजीवित पदार्थों जैसे ऐतिहासिक इमारतों पर भी इन विषैली गैसों ने अपनी काली छाया डाली है। मथुरा रिफाइनरी की एसिड लपटों के कारण आगरा के ताजमहल तथा मथुरा के मंदिरों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव देखा गया है। ताजमहल का संगमरमर पीला पडता जा रहा है, जिसे वैज्ञानिकों ने "संगमरमर का कैंसर" कहा है। इसके अतिरिक्त इंद्रप्रस्थ बिजलीघर के कोयले की राख एवं दिल्ली रेलवे स्टेशन के इंजनों के धुंए ने लालकिले के पत्थरों पर भी अपना विपरीत प्रभाव डाला है।

जल तथा वायु प्रदूषण के पश्चात् "भूमि प्रदूषण" के संबंध में विवेचना करें। "भूमि" का प्राकृतिक संसाधनों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न प्रकार के रासायनिक प्रदूषणों तथा अन्य अपशिष्ट पदार्थों का विलय प्रायः भूमि में होता रहता है जिसके कारण मनुष्य जीवन प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। भूमि प्रदूषण के कारकों में जीवनाशी रसायन, कृत्रिम उर्वरक, नगरीय अपशिष्ट पदार्थ, जहरीले अकार्बनिक पदार्थ व कार्बनिक पदार्थ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। जीवनाशी रसायनों में कीटनाशी फफूँदी नाशीक खरपतवार नाशी, रोडेन्ट नाशी तथा निमेटोडनाशी आते हैं। कृषि उत्पादन में सराहनीय वृद्धि तथा घातक रोगों से मुक्ति दिलाने में इन रसायनों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। दूसरी ओर इनके असंतुलित प्रयोग से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम उर्वरकों के अनियमित प्रयोग से कुछ तत्वों की अधिकता तथा विषैलापन हो जाता है। नगरों के सीवेज में विद्यमान फफूँदी, जीवाणु, विषाणु तथा भारी तत्वों का भूगर्भ जल तथा भूमि पर उगाए जाने वाले पौधों एवं फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। औद्योगिक कूड़े–कचरे में विद्यामान अकार्बनिक अवशेष पदार्थों के निकास का प्रबंध भी एक गंभीर समस्या है। ये अवशेष पदार्थ क्रोमियम, मरकरी, लैड आदि भारी तत्वों से युक्त होते हैं, जो विषैले होते हैं। भूमि प्रदूषण का एक अन्य स्रोत कूड़ा–करकट है। इसके अतिरिक्त कांच, प्लास्टिक, पॉलिथीन बैग, टिन आदि आते हैं। एक ही स्थान पर एकत्रित होने के कारण सूक्ष्म जीवों द्वारा इनका पूर्ण अपघटन संभव नहीं हो पाता है, फलस्वरूप इनसे प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न होती है।

जल प्रदूषण वायु प्रदूषण एवं भूमि प्रदूषण के साथ–साथ शोर की मात्रा में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। शोर अर्थात "ध्वनि प्रदूषण" को ऐसी ध्वनि के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है जो श्रोता को अरुचिकर लगे। शोर की तीव्रता की माप करने के लिए जिस इकाई का प्रयोग किया जाता है, उसे "डेसिबल" कहते हैं। यह इकाई लघुगणकीय है। सामान्यतः 55 से 60 डेसिबल का शोर मानव–स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। नोबेल पुरस्कार विजेता राबर्ट कॉक ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था कि, "भविष्य में एक दिन ऐसा आएगा, जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बुरे शत्रु के रूप में भयानक शोर से संघर्ष करना पड़ेगा। यह आधुनिक युग का अभिशाप है और हमें इसके विषय में गंभीरता से विचार करने

की आवश्यकता है।" ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित व्यक्ति की नींद में कमी, कार्य में अरुचि, क्रोध एवं मानसिक तनाव, घबराहट, जी मिचलाना, सिरदर्द, सुनने की शक्ति में बहरेपन की सीमा तक गिरावट, रक्तचाप में वृद्धि आदि व्याधियाँ हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, गर्भस्थ शिशु पर भी कुप्रभाव पड़ता है एवं उसे विकलांगता जैसे संकट में डाल सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वायु, जल भूमि एवं ध्वनि प्रदूषण ने आम आदमी की जिंदगी में जहर घोल कर रख दिया है। भारत सरकार द्वारा पर्यावरण प्रदूषण रोकने के लिए तथा पर्यावरण को अपघटित होने से बचाने हेतु पूरे देश में जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम, 1974, वायु प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम, 1981 प्राख्यापित किए गए हैं। भोपाल गैस दुर्घटना के पश्चात् यह महसूस किया गया कि औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने हेतु पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित किए जाने हेतु एक व्यापक एवं प्रभावी अधिनियम लाया जाए। इसी उद्देश्य से पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 लाया गया। केवल सरकार के नियम बना देने से यह संकट दूर होने वाला नहीं है, जब तक कि आम आदमी अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं सजग नहीं रहे।

हमें यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि प्रदूषित पर्यावरण की समस्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गरीबी और अशिक्षा से संबंधित है। साथ ही साथ हमरी विलासी तथा स्वार्थी प्रवृत्ति भी इसके लिए उत्तरादायी है। अतः इससे छुटकारा पाने के लिए पर्यावरण शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। आज समय आ गया है कि हमें अपने दृष्टिकोण में सृजनात्मक परिवर्तन लाकर एक ऐसे स्वस्थ एवं उन्नत समाज की रचना करनी है जहाँ प्रकृति और पर्यावरण से मिलकर हमारी औद्योगिक उपलब्धियाँ भावी पीढियों के लिए वरदान बन सकें।

OOO

11

पृष्ठवंशियों के अधिचर्म में विभिन्न प्रकार की ग्रंथियाँ

डॉ. सी. पी. सिंह

कार्य के अनुसार पृष्ठवंशियों के अधिचर्म में विभिन्न प्रकार की ग्रंथियाँ उपस्थिति रहती है, जैसे:–

1. **ऊरू ग्रंथियाँ (femoral glands):-** यह ग्रंथियाँ नर छिपकली की जांघ की त्वचा के भीतर की ओर एक रेखा में होती है। मैथुन के समय यह ग्रंथि मादा को पकड़ने में सहायक होती है।

2. **प्रकाशघर या दीप्त अंग (फोटोफोर):-** ये ग्रंथियाँ उन मछलियों के अधर तल पर पाई जाती हैं, जो बहुत गहरे समुद्र में वास करती हैं। इनके नीचे की ओर ग्रंथिक कोशिकाएं होती हैं जिनके नीचे परावर्तक वर्णक होता है। ग्रंथिल कोशिकाएं प्रकाश उत्पन्न करती हैं जिससे समुद्र में पाए जाने वाले जीव मछली की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उसका भोजन बन जाते हैं।

3. **स्वेद ग्रंथियाँ (sudorific glands) या (sweat glands):-** ये लंबी कुंडलित सरल नलियों के समान होती हैं। ये ग्रंथियां रुधिर से पसीने को पृथक् करती हैं। शरीर के तापमान के नियंत्रण में स्वेद ग्रंथियाँ विशेष कार्य करती हैं।

4. **पश्चांतकूट ग्रंथियाँ (uropygial glands):-** ये ग्रंथियाँ पक्षियों की पूंछ के पृष्ठतल पर पाई जाती हैं। इन ग्रंथियों में से एक प्रकार का तेलीय पदार्थ निकलता है। जो पक्षियों की यौन क्रियाओं को उत्प्रेरित करता है। इस तेल में "पोमेटक" नामक पदार्थ पाया जाता है। जिसे पक्षी अपनी चोंच से निकाल–निकाल कर अपने पंखों पर लगाते रहते हैं। जिससे इनके पंख जल सह बने रहते हैं।

5. **सविम:-** "सविम" त्वचा में उपस्थित तेल ग्रंथियों से स्रावित होता रहता है। यह बालों को तेलीय बना देते हैं।

6. **सिरुमिनस (ceruminous):-** ये वाह्यकर्ण नाल की त्वचा में रूपांतरित स्वेद ग्रंथियां होती हैं। इनसे स्रावित पदार्थ स्वेद ग्रंथियों से स्रावित पदार्थों से मिलकर मोम सदृश संसिक्थ (सीरुमेन) पदार्थ बनता है जो स्पर्शेंद्रियों (tactile organs) के कार्य से संबंधित है।

OOO

12

अनुपयोगी फलों, सब्जियों और उनके अपशिष्टों के लाभकारी उत्पाद

जगनारायण

कृषि की दिनों–दिन बढ़ती लागत ने किसानों को बहुत निराश किया है। फल और सब्जी की खेती करने वाले किसान क्षतिग्रस्त उपज के उपयोग की तकनीक को मानकर जहाँ लागत मूल्य में कमी ला पाएँगे, वहीं अपशिष्टों से उपयोगी उत्पाद बनाकर व अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त कर सकेगें। इससे किसान ज्यादा लाभ पा सकेगा।

भारतीय कृषि व्यवस्था में लगे लोगों की जानकारी के आभाव में सब्जियों और फलों की तुड़ाई के समय क्षतिग्रस्त फलों के साथ ही उपयोग के दौरान निकले अपशिष्टों को फेंककर नष्ट कर दिया जाता है, जबकि आधुनिक साधनों से फलों एवं सब्जियों के अपशिष्टों से लाभकारी उत्पादों के निर्माण से अच्छी कमाई संभव है। इस संदर्भ में विशेषज्ञों का कहना है कि फलों और सब्जियों की तुड़ाई के दौरान होने वाली क्षति का प्रतिशत 20 से 40 के बीच का होता है।

सारणी–1

विकासशील देशों में तुड़ाई के समय फलों–सब्जियों के नुकसान का विवरण

फल	अनुमानित क्षति (प्रतिशत)	सब्जी	अनुमानित क्षति (प्रतिशत)
अंगूर	27		
नींबू–वर्गीय फल	20–85	आलू	5–40
खुबानी	28	गाजर	44
एवोकेडो	43	सलाद	62
पपीता	70–100	फूलगोभी	49
केला	20–80	बंदगोभी	37
आम	17–37	टमाटर	5–50
सेब	14	प्याज	16–35

संदर्भ : खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली।

फलों–सब्जियों की इस बराबरी को नियंत्रित कर किसानों की लागत को कम करने की दिशा में प्रयत्नशील कृषि वैज्ञानिकों ने इस दिशा में व्यापक सार्थक विकल्प प्रस्तुत किए हैं। वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई तकनीकों से सब्जियों और फलों एवं उनके अपशिष्टों से मूल्य–वर्धित उत्पाद किए जा सकते हैं।

आज क्षतिग्रस्त सब्जियों और फलों को प्रसंस्कारित कर उनसे जैम, जेली, जूस, नेक्टर, सुरा, अचार एवं मुरब्बे तथा डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ तैयार किए जा रहे हैं, वहीं इनके अपशिष्टों से अनेक उपयोगी उत्पाद बनाकर लाभ प्राप्त करना भी संभव हो गया है। नीबूवर्गीय नारंगी, संतरा, नींबू, चकोतरा आदि फलों का उपयोग मुख्यतया फल के रूप में ही किया जाता है, लेकिन इन फलों से रस–स्क्वैश आदि बनाने के बाद अपशिष्ट के रूप में प्राप्त सामग्री में पेक्टिन और तैलीय तत्व पर्याप्त मात्रा में बचे रहते हैं। आज इन अपशिष्टों के शोधन से तेल और पेक्टिन की प्राप्ति से अतिरिक्त लाभ कमाया जाना संभव है। ध्यान रहे कि आज सारी दुनिया में पेक्टिन जैसा उपयोगी पदार्थ नींबू से ही प्राप्त हो रहा है। भारत में भी पेक्टिन की भारी मांग है और हम अपनी जरूरत के लिए इसे विदेशों से आयात करते हैं। सामान्यतया पेक्टिन का उपयोग जैम, जेली, मार्मेलेड जैसे खाद्य पदार्थों के निर्माण में होता है। नींबू के छिलके के अलावा आम, सेब और अमरूद के छिलकों से भी पेक्टिन प्राप्त होता है। जबकि इस तरह के फलों से प्राप्त अपशिष्टों को व्यर्थ मान कर फेंक दिया जाता है। देश में कुछ स्थानों पर पेक्टिन निकालने वाली कुछ इकाइयाँ कार्यरत हैं, लेकिन वे अपर्याप्त हैं। अतः आवश्यकता है कि फल संरक्षण इकाइयों के साथ पेक्टिन निर्माण की इकाई को लगाकर इनके उत्पादन से अतिरिक्त कमाई कर किसानों की आय बढ़ाई जाए।

फलीय अपशिष्टों से उपयोगी तत्वों की प्राप्तिः

केले के फल की प्राप्ति के बाद उसका तना बेकार हो जाता है क्योंकि इसके एक तने में केवल एक ही बार फल लगता है। अतः फल प्राप्ति के बाद केले के तने को काट कर फेंक दिया जाता है। 1000 केले के पौधे से 20 से 25 टन तना प्राप्त होता है। इस तने से 5 प्रतिशत स्टार्च की प्राप्ति होती है। इसके अलावा केले के फल चुके तने के बीच में पाए जाने वाले थोर और तने में बहुलता से पाए जाने वाले जल में लौह तत्व की पर्याप्त उपस्थिति होती है। इसे प्रसंस्कृत कर लौह–जनित रक्तवर्धक औषधियों का निर्माण संभव है। इस प्रकार केले के तने से लौह तत्वों की प्राप्ति की इकाई लगाकर केले की खेती को और लाभकारी बनाया जा सकता है।

साइट्रिक अम्लः

प्रसंस्करण उद्योग में जैम, जेली, स्कवैश, नेक्टर आदि के निर्माण में साइट्रिक अम्ल का पर्याप्त प्रयोग होता है। फल प्रसंस्करण प्रक्रिया के दौरान प्राप्त अपशिष्टों को किण्वित करके प्राप्त किया जाता है। इसके अलावा अनन्नास के जूस, गन्ने की बौगस खोई तथा शकरकंद, अंगूर और संतरे से रस निकालने के बाद बचे अपशिष्टों के किण्वन से भी साइट्रिक अम्ल की प्राप्ति होती है।

सूक्ष्म जीवों के सहयोग से फलों और सब्जियों के अपशिष्टों को अपघटित कर उनका लाभकारी रूपांतरण किया जाता है। अपघटन से प्राप्त रसायनों का प्रयोग जैम, जेली तथा जूस को टिकाऊ, आकर्षक और स्वादिष्ट बनाने के लिए किया जा रहा है। सूक्ष्म जीवों का प्रयोग वैनीलिन (वैनिला सुस्वाद) तैयार करने के लिए होता है। सूक्ष्म जीवों के सहयोग से फलों और सब्जियों के अपशिष्टों के किण्वन से गोंद, जैथिन को प्राप्त करने के लिए जेथोमोनास कंपेस्ट्रिस नामक जीवाणु को बंद गोभी एवं नींबू जाति के फलों के अपशिष्टों से संपर्कित कराया जाता है।

ISSN 2320-7736

सारणी–2

भारत में फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करण के उपोत्पाद

फल / सब्जी	अपशिष्ट सामग्री	अपशिष्ट सामग्री का उत्पादन (हजार टन)	अनुमानित व्यर्थ की मात्रा (प्रतिशत)
सेब	छिलका, फलपेष (पोमेस), बीज	1.376	35
अमरूद	छिलका, क्रोड, बीज	656	10
अंगूर	छिलका व बीज	20	20
नींबू वर्गीय फल	छिलका, रंग व बीज	1,212	50
केला	छिलका	2,378	35
आम	छिलका एवं गुठली	6,988	45

प्रकृतिक खाद्य रंगः

आजकल खाद्य में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक माध्यमों से उत्पादित रंग मानव–स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिप्रद हैं। इनके विकल्प स्वरूप फलों एवं अन्य कृषि उत्पादों से प्राप्त रंग हानिरहित और स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त होते हैं। जामुन, अंगूर, कोकुल, काला गाजर, हल्दी आदि से बने रंग जहाँ हानिरहित हैं वहीं स्वास्थ्य के लिए उपयोगी भी हैं।

सिरका– अनन्नास, सेब, संतरे के अपशिष्टों से सिरका तैयार करने की दिशा में व्यापक कार्य हुआ है। अतः इन फलों के अपशिष्टों से बने सिरके का प्रयोग अचार, सॉस आदि के निर्माण में किया जा सकता है।

ऐथेनॉल– फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण के दौरान निकलने वाले अपशिष्टों में सेलूलोस, होमी सेलूलोस लिग्निन आदि पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जिनका किण्वन कर एथेनॉल बनाया जाता है। इसका मुख्य प्रयोग ईंधन के रूप में होता है।

एन्जाइम– प्रसंस्करण उद्योग, बेकरी औषधियों एवं प्रयोगशालाओं में एन्जाइमों की भारी मांग रहती है। इसकी मांग को पूरा करने के लिए हम इसे विदेशों से आयात करते हैं, जिसके लिए हमें विदेशी मुद्रा में भारी भुगतान करना पड़ता है। इनके उत्पादन के लिए फल और सब्जियों के अपशिष्टों का किण्वन किया जा सकता है।

अमीनो अम्ल– फलों एवं सब्जियों के अपशिष्टों पर सूक्ष्म जीवों का प्रयोग कर किण्वन क्रिया के द्वारा अमीनो अम्ल का निर्माण होता है। इस अम्ल का प्रयोग फलों के प्रसंस्करण से तैयार खाद्य सामग्रियों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

आयुर्वेदिक औषधियाँ– फलों के अपशिष्ट से अनेक रोगनिवारक आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ, जामुन के गूदे के उपयोग के बाद बचे बीज से मधुमेह की औषधि बनाई जाती है। इसी प्रकार कई अन्य फलों के अपशिष्टों से अनेक उपचारक औषधियों का निर्माण होता है।

पोषक तत्व– मानव शरीर को स्वस्थ और नीरोग रखने में विटामिनों की अनिवार्य भूमिका है। इसके अभाव में मानव शरीर में कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आज वैज्ञानिक सोयाबीन और मक्के के आटे को सूक्ष्म जीवों से उपचारित कराकर विटामिन बी.12 प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार विटामिन बी.1 व बी.2 तथा बीटा कैरोटीन का निर्माण मक्के के अपशिष्ट पर गोसीपी नामक सूक्ष्म जीव द्वारा किण्वन कर किया जा रहा है।

ISSN 2320-7736

सारणी–3

खाद्य संस्करण से प्राप्त अपशिष्ट सामग्री से किण्वन द्वारा तैयार एन्जाइम

अपशिष्ट पदार्थ	किण्वन में प्रयुक्त सूक्ष्मजीव	एन्जाइम जो तैयार हुआ
सेब का फलपेष (पोमेस)	*ट्राईकोडर्मा विरड़ी*	सेलूलेज
	एस्परजिलस जाति	जाइलानेज
बंदगोभी से प्राप्त अपशिष्ट	स्यूडोमोनास जाति	एमिलेस प्रोटीएज, सेलूलेज
चाय पत्ती के अवशेष	*सेरीना यूनिकलर, प्लूरोटस ओस्ट्रीऐटस*	जाइलानेज
चुकंदर का गूदा	एस्परजिलस फीनीसिस	बीटा–ग्लूकोसीडेज
बंदगोभी के अचार से प्राप्त अपशिष्ट सामग्री	*कैंडिडा यूटिलिस*	इन्वरटेज
अंगूर के सोमरस से बची कतरने	*सेरीना यूनिकरल*	सैलूलेज, लाइनानेज, लिग्निनेज
गन्ने का बैगास	*ट्राईकोडर्मा रीसई*	सैलूलेज

सारणी–4

फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण के कुछ उपोत्पादों का संघटनमान (प्रति 100 ग्राम)

व्यर्थ सामग्री	नमी (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	वसा (ग्राम)	कार्बोहाइड्रेट्स (ग्राम)	रेशा (ग्राम)	पोषक तत्व (ग्राम)
कद्दू के बीज	6.0	29.5	35.4	12.0	12.5	4.6
खरबूजे के बीज	6.8	21.0	33.0	30.0	-	4.0
तरबूज के बीज	4.3	34.1	52.6	0.8	4.5	3.7
मौसम्बी के बीज	4.0	15.8	36.9	14.0	-	4.0
केले का छिलका	79.2	0.8	0.8	1.7	5.0	2.1
कटहल की गुठली	8.5	7.5	11.8	30.8	14.2	6.5
आम की गुठली	8.2	8.5	8.9	74.5	-	3.7
सेब का फलपेष (पोमेस)	12	3.0	1.7	17.4	16.2	1.7

सारणी–5

कुछ अल्प समुपयोजित फलों एवं सब्जियों के अवशेषों से प्राप्य मूल्य वर्धित उत्पाद

फल / सब्जी	उत्पादन क्षेत्र	उत्पाद जो तैयार किए जा सकते हैं
तरबूज के छिलके	लखनऊ (उत्तर प्रदेश)	टूटी फ्रूटी हेतु।
कुकुरबिटेसी कुल की सब्जियों के बीज	उत्तर प्रदेश, गुजरात	मगज, जिसका उपयोग दुग्ध पेय एवं बेकरी में करते हैं।
इमली के बीज	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र कर्नाटक	स्टार्च जिसका उद्योग में प्रयोग करते हैं।
जंगली अनार के बीज	जम्मू, हिमाचल प्रदेश	मसाला।
जंगली खुबानी (चूला या चूली)	जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश	बेकरी हेतु टूटी फ्रूटी उव आइसक्रीम आदि।
काजू फल (कैशू ऐपल)	महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा	जूस, सीरप, फेनी, गोंद आदि।
जंगली आंवला, हरड़ व बहेड़ा	उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र	आयुर्वेदिक औषधियाँ जैसे च्यवनप्राश, त्रिफला आदि।

जैविक खाद और बायो गैसः

फलों की ठोस और तरल अपशिष्ट सामाग्री से बायो गैस और जैविक खाद का निर्माण किया जा सकता है। फलों के अपशिष्ट को सड़ाने के लिए चूने का उपयोग जरूरी है क्योंकि फल के अवशेष में अम्ल पाया जाता है। अम्ल की उपस्थिति के चलते सड़ाने वाले सूक्ष्म जीव मर जाते हैं, लेकिन सब्जियों के अपशिष्ट से बायोगैस और जैविक खाद का उत्पादन सरलता पूर्वक संभव है। इसके अलावा सेब के फलपेष एवं नींबूवर्गीय फलों के छिलकों को सुखकर पशुओं के चारे के साथ प्रयोग किया जा सकता है। इसके सूखे छिलकों में प्रोटीन की मात्रा रेशे और वसा से भले ही कम हो लेकिन ये कार्बोहाइड्रेट से भरपूर होती है।

उपरोक्त तथ्यों को व्यापक रूप से प्रायोगिक धरातल पर लाकर किसानों और कृषि कार्य में लगे लोगों के बीच ले जा कर हम कृषि को और फायदे वाला बना सकते हैं।

OOO

13

धूसर नेवला : चंडीगढ़ का राजकीय पशु

डॉ. परशुराम शुक्ल

नेवला विवेरिडी (Viverridae) कुल का जीव है। विश्व में अनेक जातियों के नेवले पाए जाते हैं। इनमें से एक है– धूसर नेवला। इसे चंडीगढ़ ने अपना राजकीय पशु घोषित किया है। धूसर नेवले का वैज्ञानिक नाम हेर्पेस्टेस एडवर्डसाइ (Herpestes edwardsii) है। अंग्रेजी में इसे ग्रे मॉन्गूस (Grey mongoose) कहते हैं।

नेवला एक शानदार शिकारी वन्यजीव है। यह हमेशा सचेत और क्रियाशील रहता है एवं इसमें आश्चर्यजनक फुर्ती व तेजी होती है। अपने इन्हीं गुणों के कारण यह अत्यत विषैले कोबरा सर्प तक को मार डालता है और खा जाता है।

नेवला स्तनपायी वर्ग का प्राणी है। इसका मूल स्थान अफ्रीका है। यह अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों अर्थात् गर्म स्थानों पर बहुतायत से पाया जाता है। भारत और अफ्रिका के साथ ही यह मेडागास्कर, दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक देशों तथा स्पेन और फ्रांस के कुछ भागों में भी पाया जाता है। नेवला जंगलों, अर्धरेगिस्तानों, खुले मैदानों, खेतों और ग्रामीण बस्तियों के निकट सभी स्थानों पर देखने को मिल जाता है। जंगलों में यह झाड़ियों अथवा दीमक की उजड़ी हुई बस्तियों में बसेरा करता है, जबकि यह मानव–बस्तियों के निकट कच्चे मकानों की छतों, पुलियों के नीचे तथा सूखी नालियों आदि में अपना निवास बनाता है।

नेवला एकांत में रहनेवाला प्राणी है किंतु इसकी कुछ जातियाँ समूह बनाकर रहती हैं। अफ्रीका में पाया जानेवाला पीला नेवला पचास तक के परिवार समूहों में देखा गया है। यह स्वयं भूमि खोदकर, लोमड़ी की तरह मांद बनाता है या दूसरे वन्य जीवों द्वारा छोड़ी गई मांदो पर अधिकार जमाकर रहता है।

विश्व में नेवले की 48 जातियाँ हैं। सभी जातियों की शारीरिक संरचना और आदतें लगभग एक जैसी होती हैं, फिर भी इनमें थोड़ा बहुत अंतर पाया जाता है।

नेवले का शरीर फुर्तीला तथा लोचदार होता है। इसके शरीर की लंबाई 40 सेंटीमीटर से 120 सेंटीमीटर तक होती है एवं पूंछ की लंबाई लगभग शरीर के बराबर होती है। नेवले की त्वचा कठोर और मजबूत होती है तथा इस पर धूसर रंग के घने चमकीले बाल होते हैं। इसके कान बहुत छोटे होते है एवं बालों से ढ़के होने के कारण दिखाई नहीं देते। नेवले के पैर छोटे होते हैं और इसके चारों पैरों में पाँच–पाँच उंगलियाँ होती है और इनमें चमकदार, पैने व नुकीले नाखून होते हैं। नेवले की शारीरिक संरचना इस प्रकार की होती है कि यह एक–डेढ़ मीटर लंबी छलांग सरलता से लगा सकता है और दीवारों एवं ऊंची–नीची पथरीली जमीन पर तेजी से भाग सकता है। इसकी घ्राण शक्ति, श्रवण शक्ति तथा दृष्टि बहुत तेज होती है।

मेडागास्कर में नेवले की एक जाति पाई जाती है, जिसके शरीर पर ज़ेब्रा के समान धारियाँ होती हैं। इसके शरीर की लंबाई 100 सेंटीमीटर से 110 सेंटीमीटर तक होती है तथा इसकी बहुत सी आदतें गंध बिलाव से मिलती–जुलती है। इसका o§kfud uke eaxks eaxks(Mungos mungo) है।

नेवले की कुछ जातियाँ यूरोप में पाई जाती हैं। इनमें दक्षिणी फ्रांस और स्पेन का नेवला प्रमुख है। इनका शरीर धूसर रंग का होता है एवं पूँछ पर काले रंग का निशान ढोता है।

दक्षिण एशिया में एक विशिष्ट जाति का नेवला पाया जाता है, जो केकड़े खाता है। यह नेपाल, दक्षिणी चीन, बर्मा और मलाया में बहुतायत से देखने को मिलता है। इसकी लंबाई 110 सेंटीमीटर तक तथा रंग धूसर होता है। इसकी गर्दन के दोनों ओर सफेद रंग की पट्टियाँ होती है, जिनकी सहायता से इसे सरलता से पहचाना जा सकता है। इसका वैज्ञानिक नाम हरपेस्टेस उर्वा (Herpestes urva) है। विश्व का सबसे छोटा नेवला अफ्रीका का बौना नेवला है। यह सहारा के दक्षिण में देखने को मिलता है। इसकी अधिकतम लंबाई 46 सेंटीमीटर तक होती है। इसका वैज्ञानिक नाम हेलोगल परवुला (Heogale parvula) है

नेवला मांसभक्षी स्तनधारी प्राणी है। इसका प्रिय भोजन चूहें, साँप और विभिन्न प्रकार के जीव–जंतुओं के अंडे हैं। इसके साथ ही यह मेढ़क, छिपकली, गिरगिट व छोटे–छोटे पक्षी भी बड़े चाव से खाता है। नेवले का शिकार करने का ढंग बिल्ली से विपरीत होता है। बिल्ली अपने शिकार के पास दबे पांव पहुंचती है, जबकि नेवला तेजी से झपट कर आक्रमण करता है और सर्वप्रथम अपने शिकार का सर या गर्दन चबा डालता है।

नेवला सामान्यतया दिन में शिकार करता है, किंतु कुछ जातियों के नेवले रात्रि में भी शिकार करते हैं। अफ्रीका का सफेद पूँछवाला नवेला केवल रात्रि में ही शिकार के लिए निकलता है। नेवले की अधिकांश जातियाँ भूमि पर रहती हैं, किंतु मेडागास्कर का रिंगटेल नेवला भूमि के साथ ही वृक्षों पर रहना अधिक पसंद करता है। यह छोटे–छोटे पक्षियों को एवं अनेक अंडों को अपना भोजन बनाता है।

नेवला अंडों को बड़ी सफाई से खाता है। यह अपने आगे के पैरों से अंडे को पकड़ कर उसमें एक छेद करता है और इसी छेद से सारा द्रव

पदार्थ पी जाता है। यदि अंडे का आवरण कठोर होता है तो यह उसे किसी मजबूत चट्टान पर पटकता है और फिर टूट जाने पर उसे चट कर जाता है। कुछ जातियों के नेवले सीपी के समान कठोर आवरण में रहनेवाले जीव–जंतुओं का भक्षण करते हैं। ये सर्वप्रथम सीपियों तथा ऐसे ही जीवों को एक स्थान पर एकत्रित करते हैं और फिर अंडों के समान चट्टानों पर पटक कर, तोड़ते हैं और खाते हैं।

केकड़ा खानेवाला नेवला केकड़ों के साथ ही छोटे–छोटे कछुओं तथा पानी के अन्य जीवों का भी शिकार करता है। यह पानी के नेवले को भी नहीं छोड़ता है। नेवले की कुछ जातियां शाकाहारी होती हैं। ये विभिन्न प्रकार के जंगली फल, पत्तियां एवं वनस्पतियां आदि खाती हैं।

नेवला दुस्साहसी जीव है। यह कभी–कभी मुर्गी, मुर्गे तथा सारंग जैसे पक्षियों पर भी आक्रमण कर देता है और उन्हें अपना आहार बना लेता है। चिड़ियाघरों में तो यह भोजन के बाद अलसाए पड़े शेर के कटघरे में निडर होकर चला जाता है और बचे हुए मांस के टुकड़े उठा लाता है। नेवला मानव का मित्र है, किंतु यह अन्य जीवों के लिए बहुत घातक है। यह जितना खाता है, उससे अधिक जीवों को मार डालता है। नेवले को सफाई बहुत पसंद है। यह भोजन के बाद दाँतों मे फँसे हुए मांस को हमेशा नाखूनों से साफ कर लेता है। इसके सबसे बड़े शत्रु है– जंगली कुत्ते। जंगली कुत्ते नेवले को मार कर खा जाते हैं, किंतु ये कुत्ते भी लाल नेवले को नहीं छेड़ते।

नेवले और साँप के संबंध में भारत ही नहीं, विश्व के प्रायः सभी देशों में अनेक किंवदतियां और भ्रांतियां प्रचलित हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि नेवले के शरीर पर सांप के विष का प्रभाव नहीं पड़ता तो कुछ लोग यह मानते हैं कि सांप से लड़ाई के समय नेवला एक विशेष प्रकार की जड़ी खा लेता है और एक विशेष प्रकार की घास में लोट लगा लेता है। इससे सांप का जहर उतर जाता है। वास्तव में दोनों बातें भ्रामक हैं। नेवला न कोई जड़ी खाता है न घास पर लोट लगाता है और न ही इसका शरीर सर्प के विष का प्रतिरोधी होता है। नेवला सर्प से लड़ते समय अपने शरीर के बाल खड़े कर लेता है। इससे इसका आकार दुगना हो जाता है और साँप भ्रमित हो जाता है। इसके साथ ही यह बड़ी चालाकी और होशियारी से साँप के आगे–पीछे मंडराता है, जिससे सांप क्रोध में आकर फुंफकारने लगता है। इस समय भी नेवला अपना धैर्य और संतुलन बनाये रखता है तथा सांप के निकट पहुंचने का प्रयास करता है। सांप क्रोध में कभी जमीन पर फन मारता है तो कभी नेवले पर। नेवला सांप से बचते हुए अवसर की तलाश में रहता है और जैसे ही उसे मौका मिलता है, वह सांप को पीछे से पकड़ कर उसका सर चबा डालता है। कुछ ही पलों में सर्प ठंडा पड़ जाता है और नेवला उसे खा जाता है। सर्प को अपना आहार बनाते समय भी नेवला इसके विषदंत का पूरा ध्यान रखता है। वास्तव में नेवले को प्राकृतिक रूप से सर्प के विषैले या विषहीन होने का आभास हो जाता है। यही कारण है कि यह सर्प का शिकार करते समय विशेष रूप से सावधान रहता है।

अपनी फुर्ती, धैर्य और सावधानी के बल पर यह अत्यंत विषैले समुद्री सर्पों को भी सरलता से अपना आहार बना लेता है।

नेवले के प्रजनन के संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। जीववैज्ञानिकों का अनुमान है कि इनमें पूरे वर्ष भर समागम होता है। समागम के बाद 55 से 60 दिनों के मध्य मादा नेवला 2 से 4 तक बच्चों को जन्म देती है। मादा ही बच्चों का पालन–पोषण करती है तथा उन्हें शिकार करना सिखाती है। नेवले के बच्चों का विकास बड़ी तेजी से होता है। इस मध्य बच्चे मादा के साथ ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं और सर्दियों में धूप सेंकते हैं।

भारत में 6 जातियों के नेवले पाए जाते हैं। ये सभी हरपेस्टेस वंश के हैं। यहाँ पर इन सभी का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

1. **लघु नेवलाः** इसका वैज्ञानिक नाम हरपेस्टेस जावानिकस (Herpestes javanicus) है। अंग्रेजी में इसे इंडियन मॉंगूस कहते हैं। यह भारत में पाया जानेवाला सबसे छोटा नेवला है। इसके शरीर की पूँछसहित लंबाई 35 सेन्टीमीटर से 50 सेन्टीमीटर तक होती है तथा शरीर का वजन 750 ग्राम से लेकर 900 ग्राम तक होता है। लघु नेवले का रंग जैतूनी कत्थई अथवा गहरा कत्थई होता है एवं फर छोटा और सिल्क की तरह चिकना होता है। इसकी दोनों आँखों के चारों ओर सुनहरे रंग का एक घेरा होता है, जिससे ऐसा लगता है कि यह चश्मा लगाए हो।

लघु नेवला उत्तरी भारत के मैदानी भागों में तथा भारत के कुछ रेगिस्तानी भागों में पाया जाता है। उत्तर भारत के नेवले का पेट और शरीर के नीचे का भाग कत्थई होता है तथा रेगिस्तानी नेवले का पेट और शरीर के नीचे का भाग सफेद अथवा पीलापन लिए हुए सफेद होता है। यह छोटी–छोटी झाड़ियों अथवा खेतों में रहता है। कभी–कभी यह बस्तियों के भीतर आ जाता है और घरों के भीतर आवास बना लेता है। इसकी एक उपजाति पश्चिमी बंगाल में पायी जाती है। यह दलदल में रहता है इसे दलदल का नेवला (Marsh Mangoose) कहते हैं।

2. **केकड़ा खाले वाला नेवलाः** इसका वैज्ञानिक नाम हरपेस्टस उर्वा (Herepestes urva) है। अंग्रेजी में इसे क्रैब–ईटिंग मॉंगूस कहते हैं। यह पश्चिम बंगाल, असम, अरुणाचल प्रदेश और त्रिपुरा में पाया जाता है तथा नमीवाले पतझड़ वनों की जलधाराओं के किनारे, दलदलवाले भू–भागों, चावल के खेतों आदि में रहना पसंद करता है। यह प्रायः मानव बस्तियों से दूर रहता है।

केकड़ा खानेवाला नेवला लघु नेवले से बड़ा होता है। इसके शरीर की लंबाई 45 सेंटीमीटर से 50 सेंटीमीटर तक तथा वजन 1.8 किलोग्राम से 2. 3 किलोग्राम तक होता है। केकड़ा खानेवाले नेवले की गर्दन पर सफेद रंग की एक चौड़ी पट्टी होती है तथा गला धूसर होता है और इस पर सफेद सिरेवाले बाल होते हैं। इनकी सहायता से इसे सरलता से पहचाना जा सकता है। इसके पीछे के

पैर के तलवे बालदार होते हैं, पूँछ तुलनात्मक रूप से छोटी होती है तथा इसका सिरा पीलापन लिए होता है। यह केकड़े के साथ–साथ मछलियों, घोंघों और मेंढको का भी शिकार करता है।

3. **धारीदार गर्दनवाला नेवला**:– यह दक्षिण भारत का नेवला है। इसका वैज्ञानिक नाम हरपेस्टस विटिकॉलिस (Hespectes viticllis) है। अंग्रेजी में इसे स्ट्रिप–नेक्ड मॉंगूस कहते हैं। यह पश्चिमी घाट के दलदलवाले और नमीवाले भागों में पाया जाता है। धारीदार गर्दनवाला नेवला एशिया का सबसे बड़ा नेवला है। इसके शरीर की लंबाई 40 सेन्टीमीटर से 55 सेन्टीमीटर तक तथा वजन 2.5 किलोग्राम से लेकर 3.5 किलोग्राम तक होता है। इसका रंग कत्थई से लेकर पीलापन लिए हुए धूसर होता है तथा इस पर लाली होती है। इसकी गर्दन पर दोनों ओर कोने के पास से लेकर कंधे तक गहरे रंग की एक चौड़ी धारी होती है। इसीलिए इसे धारीदार गर्दनवाला नेवला कहते हैं। इसके पैर छोटे होते हैं तथा पूँछ लंबी होती है एवं पूँछ का अंतिम सिरा काला होता है। उत्तर कनाडा के पास पाए जानेवाले धारीदार गर्दनवाले नेवले के शरीर पर लाल रंग नहीं होता है।

नेवले की अन्य जातियों के समान धारीदार गर्दनवाला नेवला मांसाहारी है, यह बड़े जीवों का भी शिकार करता है तथा साधारण केकड़े से लेकर मूषक मृग तक को अपना आहार बनाता है।

4. **भूरा नेवला**:– यह दक्षिण भारत के पर्वतीय भागों का नेवला है। इसका वैज्ञानिक नाम हरपेस्टेस ब्रैकीयूरस (Herpestes brachyurus) है। अंग्रेजी में इसे ब्राउन मॉंगूस कहते हैं। भूरा नेवला पश्चिमी घाट के नमीवाले भागों में कोडगु के दक्षिण में पाया जाता है। यह एक जंगली नेवला है और मानव बस्तियों से दूर रहना पसंद करता है।

भूरा नेवला मध्यम आकार का होता है। इसके शरीर की लंबाई 38 सेन्टीमीटर से 50 सेन्टीमीटर तक तथा वजन 1.5 किलोग्राम से लेकर 2.7 किलोग्राम तक होता है। इसका शरीर लंबा, गठा हुआ और मजबूत होता है तथा पूरे शरीर का रंग गहरा भूरा होता है। इसके पैरों का रंग भी गहरा भूरा होता है एवं पिछले पैरों पर घने बाल होते हैं। इसकी पूँछ की लंबाई इसके सिर और शरीर की लंबाई की दो तिहाई के बराबर तक हो सकती है एवं इस पर भी घने बाल होते हैं।

5. **लाल नेवला**:– यह एक शानदार जंगली नेवला है। इसका वैज्ञानिक नाम हरपेस्टस स्मिथाइ (Herpestes smithii) है। अंग्रेजी में इसे रूडी मॉंगूस कहते हैं। यह भारत के बहुत बड़े क्षेत्र में पाया जाता है। इसे उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश से दिल्ली तक तथा पूर्व में बिहार तक देखा जा सकता है। इसके साथ ही यह मध्य भारत और पश्चिमी भारत के बहुत बड़े भाग में भी मिलता है।

लाल नेवले के शरीर की लंबाई 39 सेन्टीमीटर से लेकर 47 सेन्टीमीटर तक होती है एवं शरीर का वजन 950 ग्राम से लेकर 1.8 किलोग्राम तक होता है। इसके शरीर का रंग लाली लिए हुए भूरा होता है। इसके पैर भी लाली लिए हुए भूरे रंग के होते हैं। लाल नेवले की पूँछ का रंग भी शरीर के समान होता है, किन्तु इसकी पूँछ का सिरा काला होता है।

6. **धूसर नेवला**:– धूसर नेवला एक शानदार शिकारी नेवला है। यह विषैले नाग पर भी आक्रमण कर देता है और उसे मार डालता है। यही कारण है कि यह संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हो गया हैं। चंडीगढ़ ने इसी नेवले को अपना 'राज्य पशु' घोषित किया है। धूसर नेवला दक्षिण एशिया का नेवला है। यह भारत के साथ ही पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल आदि में भी पाया जाता है। भारत में इसे लगभग सभी भागों में देखा जा सकता है। इसीलिए इसे सामान्य भारतीय नेवला कहते हैं। भारत की अलग–अलग भाषाओं में इसे अलग–अलग नामों से जाना जाता है इसे कश्मीरी में नूल, उड़िया में नेउला, गुजराती में नोरियो, बॉंग्ला में बेजी, मराठी में मंगूस, तेलगू में मेन्तवा मंगिस तथा तमिल, कन्नड़ और मलयालम में नीरी कहते हैं।

धूसर नेवला विविधतापूर्ण आवासों में रहता है। यह खुले जंगलों में, जंगलों के छोर पर, चट्टानी मैदानों में, झाड़ियोंवाले भागों में खेतों में तथा जल स्रोतों के निकट रहना पसंद करता है। यह प्रायः मानव बस्तियों के निकट आ जाता है और घरों के भीतर तक घुस आता है। कभी–कभी इसे घर और सड़क की नालियों में स्थायी रूप से रहते हुए देखा गया है। सामान्यतया यह बाग–बगीचों, खेतों, झाड़ियों आदि के नीचे, जमीन खोदकर बिल बना लेता है और उसी में रहता है। कभी–कभी यह चट्टानों के नीचे भी स्थायी आवास बना लेता है। नेवले की अन्य जातियों के समान, धूसर नेवला भी कुशल तैराक होता है एवं पानी में लंबे समय तक रह सकता है।

धूसर नेवले की शारीरिक संरचना अन्य नेवलों के समान होती है, किंतु इसका शरीर अन्य नेवलों से अधिक मजबूत, गठा हुआ और शक्तिशाली होता है। यह मध्यम आकार का नेवला है। इसके शरीर की लंबाई 35 सेन्टीमीटर से लेकर 45 सेन्टीमीटर तक तथा वजन 0.9 किलोग्राम से लेकर 1.7 किलोग्राम तक होता है। इसके चारों पैरों का रंग शरीर के रंग की तुलना में अधिक गहरा होता है। इसकी पूँछ बहुत लंबी होती है। इसकी लंबाई इसके सिर और शरीर के जोड़ के बराबर तक हो सकती है। धूसर नेवले के शरीर का रंग पीलापन लिए हुए धूसर होता है तथा पेट और शरीर के नीचेवाला भाग हल्के रंग का होता है। रेगिस्तानी भागों में धूसर नेवले की एक उपजाति पाई जाती है। इसका रंग अधिक लाल होता है। इसी प्रकार दक्षिण भारत में इसकी एक जाति पाई जाती है, जिसका रंग अधिक धूसर होता है।

धूसर नेवले की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसका समूर या फर सभी जातियों के नेवलों से अधिक मोटा और मजबूत होता है। सभी नेवलों में नर, मादा से बड़ा होता है तथा इन्हें रंगों की पहचान होती है।

धूसर नेवला अन्य नेवलों के समान हमेशा दिन के समय सक्रिय रहता है, किंतु इसे रात के समय में भी भोजन की खोज करते हुए देखा जा सकता है। इसका प्रमुख भोजन चूहे जैसे जीव तथा विभिन्न प्रकार के पक्षियों के अंडे हैं। इसके साथ ही यह छिपकली और छोटे–छोटे अरीढ़धारी

जीवों का भी शिकार करता है। चंबल क्षेत्र में पाया जानेवाला नेवला कभी–कभी घड़ियाल के अंड़े भी चट कर जाता है।

धूसर नेवले का शिकार करने का ढंग बड़ा रोचक होता है। यह शिकार को ढूंढ़ने के लिए अपनी घ्राण शक्ति के साथ ही अपनी आँखों का भी उपयोग करता है। यह छोटे–छोटे कीड़े–मकोड़ों को तो देखते ही चटकर कर जाता है और बिच्छू जैसे जीवों को भी कुछ ही क्षणों में मारकर खा जाता है। बड़े जीवों की पहले यह खोज करता है और फिर उनका पीछा करता है तथा निकट पहुँच कर उनके सिर और गर्दन पर काटता है। इससे इसका शिकार बुरी तरह घायल हो जाता है, अंत में यह उसे अपना आहार बना लेता है। कभी–कभी यह पत्थर उठाकर, उनके नीचे छिपे कीड़े–मकोड़ों की खोज करता है और मिल जाने पर उन्हें मारकर खा जाता है। धूसर नेवला पानी के भीतर घुसकर, पानी के जीवों का भी शिकार करता है एवं मछली, घोंघे आदि खाता है। पानी में शिकार करते समय यह अपने कान बंद कर लेता है, जिससे शरीर के भीतर पानी न जा सके। इसी प्रकार धूल से बचने के लिए भी यह अपने कान बंद कर लेता है। नेवले के शरीर में यह व्यवस्था होती है कि यह जब चाहे अपनी इच्छा से अपने कान बंद कर सकता है और खोल सकता है।

धूसर नेवला बड़ा तेज, साहसी और फुर्तीला शिकारी वन्यजीव है। यह अपनी चालाकी और फुर्ती से नाग को भी मार डालता है और खा जाता है। वास्तव में नेवला एक ऐसा जीव है कि इसे जो भी जीव मिल जाता है और जिसका यह शिकार कर सकता है, उसे मार कर खा जाता है।

नेवले का समागम और प्रजनन बड़ा रोचक होता है। इसमें वर्ष भर समागम और प्रजनन देखा जा सकता है। अन्य नेवलों के समान धूसर नेवला भी प्रायः अकेला रहता है, किन्तु समागम के समय यह जोड़े में दिखाई देता है। समागम काल में नर मादा एक दूसरे की खोज करते है और फिर एक साथ रहना आरंभ कर देते हैं। समागम काल में दोनों अनेक बार समागम करते हैं। इसके बाद ये अलग–अलग हो जाते हैं। गर्भकाल पूरा होने पर मादा बच्चे देती है और उन्हें अपना दूध पिलाती है। इसके बच्चों का तेजी से विकास होता है और शीघ्र ही ये वयस्कों के समान जीवन आरंभ कर देते हैं।

भारतीय नेवला अर्थात् धूसर नेवला एक शानदार उपयोगी वन्यजीव है। इसकी गणना विश्व में सर्वाधिक संख्या में पाए जानेवाले नेवलों में की जाती है। यह चूहों को खाकर हमारी फसलों को बचाता है। इस प्रकार धूसर नेवले को मानव के मित्र के रूप में समझा जा सकता है। यह बड़ा साहसी होता है और दो मीटर तक लंबे और अत्यंत विषैले सर्प पर भी आक्रमण कर देता है और उसे मार डालता है। भारतीय नेवला जंगल में अपने प्राकृतिक रूप में अत्यंत हिंसक और खूँखार होता है, किंतु इसे सरलता से पालतू बनाया जा सकता है। पालतू नेवला मानव के प्रति वफादार होता है एवं विभिन्न प्रकार से अपना प्रेम प्रदर्शित करता है। यह दूध, रोटी, डबल रोटी, फल तथा कच्चा मांस बड़े शौक से खाता है।

नेवले में पर्यावरण से अनुकूलन करने की अद्भुत एवं विशिष्ट क्षमता होती है। यही करण है कि यह धरती पर अभी तक अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहा है और इसकी संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। नेवला पूर्णतया नए परिवेश में भी अपना अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम है। इस संबंध में एक घटना का उल्लेख आवश्यक है–

ब्रिटिश शासनकाल में सन् 1872 में भारत से बहुत से नेवले जमैका ले जाए गए। जमैका में चूहे इतने अधिक हो गए थे कि वहाँ के गन्ना उत्पादक इनसे बुरी तरह परेशान थे। चूहे प्रतिवर्ष चालीस हजार पौंड की फसलों को नुकसान पहुंचा रहे थे। सभी उपाय विफल हो जाने के बाद भारत से नेवलों का आयात किया गया। जमैका से नेवलों को कैरेबियन द्वीप और फिर वहाँ से हवाई ले जाया गया। ये सभी द्वीप चूहों की समस्या से परेशान थे। इन्होंने चूहों का तो सफाया कर दिया, साथ ही भी द्वीप के पशु–पक्षियों को अपना आहार बनाना आरंभ कर दिया। इससे इन द्वीपों के पक्षियों की अनेक जातियाँ पूरी तरह विलुप्त हो गई। नेवले के इसी दुर्गुण के कारण संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा अन्य अनेक देशों में नेवला ले जाने पर कठोर प्रतिबंध है।

ooo

14

ब्रह्मांड पर 'ब्लैक होल' (कृष्ण विवर) की काली छाया

विजन कुमार पांडेय

हाल ही में नासा के वैज्ञानिकों ने एक 'ब्लैक होल' (कृष्ण विवर) से एक्स किरणों की विशाल लपटें देखी, जिससे वैज्ञानिकों ने यह आंका है कि ब्लैक होल वास्तव में ब्लैक होल नहीं बल्कि यह सूर्य की तरह दहकता आग का गोला है। इस बात की पुष्टि भारतीय वैज्ञानिक पहले भी कर चुके हैं। खगोलविदों के अनुसार, अत्यंत विशाल खगोल पिंड भी बेहद सघन पिंड वाले ब्लैक होल में समा जाते हैं, क्योंकि ब्लैक होल का गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक होता है कि प्रकाश तक उसकी सीमा से बाहर नहीं निकल पाता। नासा द्वारा पिछले महीने यह खुलासा करना एक आश्चर्य था कि नासा की दो अंतरिक्ष दूरबीनों ने एक अत्यंत विशाल ब्लैक होल से एक्स किरणों की विशाल लपटें निकलती देखी। ब्लैक होल से निकलने वाली एक्स किरणों की ये विशाल लपटें इस मायने में अलग थीं कि वे ब्लैक होल के कोरोना में हुए भीषण विस्फोट के कारण उत्सर्जित हुईं। ऐसे में यह सवाल उठता है कि यदि ब्लैक होल से कुछ भी बाहर नहीं आ सकता तो कोरोना कैसे बाहर आया? अर्थात् ब्लैक होल से बाहर निकला जा सकता है। नासा की इस नई खोज से इस सिद्धांत की पुष्टि होती है कि ब्रह्मांड में कोई वास्तविक ब्लैक होल मौजूद ही नहीं है और जिन्हें हम ब्लैक होल कहते हैं, वे खगोल पिंड वास्तव में चुंबकीय प्लाज्मा के भीषण रूप से गर्म गोले हैं। दरअसल जब कोई विशालकाय तारा किसी ब्लैक होल से टकराता है तो उस बेहद गर्म तारे में मौजूद विकिरण गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ बाहर की ओर निकलने वाला एक बल निर्मित करती है, परिणामस्वरूप अत्यंत धीमी गति से संकुचन शुरू हो जाता है। इस तर आइंस्टाइन के सिद्धांत में जिसे ब्लैक होल कहा गया, उसे हम विशालकाय तारे के संकुचित होने से निर्मित बेहद गर्म आग का गोला या 'मैग्नेटोस्फेरिक इटर्नली कोलैप्सिंग ऑब्जेक्ट्स' (एमईसीओ) कह सकते हैं। इस नए सिद्धांत के समर्थन में ताजा सबूत 2000 के बाद से कई शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किए गए हैं। चुंबकीय गोले का हमारे पास सबसे अच्छा उदाहरण

हमारे सौरमंडल का ही सूर्य तारा है, जिसके चारों ओर बेहद पतली प्लाज्मा की पर्त है जिसे किरीट (कोरोना) कहते हैं।

ब्लैक होल से एक्स किरणों का दिखाई देना वैज्ञानिकों के लिए एक नए शोध का विषय बन गया है। अभी तक तो सभी यही जानते थे कि ब्लैक होल से निकलना असंभव है। लेकिन मशहूर भौतिकविज्ञानी स्टीफन हॉकिंग का कहना है कि ब्लैक होल की गहरी खाई से निकल पाना संभव है। स्टीफन हॉकिंग ने ब्लैक होल के बारे में यह नई जानकारी देकर सभी को चौंका दिया है। उन्होंने बताया कि ब्लैक होल के भीतर से बचकर निकलना संभव हो सकता है। ब्लैक होल ऐसी खगोलीय चीज है जिसका गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र इतना शक्तिशाली होता है कि प्रकाश तक भी इसके खिंचाव से नहीं बच सकता तो फिर इससे बाहर कैसे निकला जा सकता है? इस बात ने वैज्ञानिकों को अचंभे में डाल दिया। हॉकिंग ने अपने नए शोध से यह नई जानकारी दी है कि इससे निकल पाना संभव है। हॉकिंग का यह शोध पत्र, फिजिकल रिव्यू लेटर्स में प्रकाशित हुआ है। इसमें डॉ. हॉकिंग ने लिखा है कि जैसा पहले ब्लैक होल के बारे में जानकारी थी कि यह अंतहीन कैदखाना हैं, ऐसा यह है नहीं। अगर आप दुर्भाग्यवश किसी ब्लैक होल में फंस जाते हैं तो हार मत मानें, वहां से बच निकलने का रास्ता है। हॉकिंग द्वारा दी गई यह नई जानकारी ना केवल ब्लैक होल की परिभाषा को बदल देगी बल्कि इस बात से भी पर्दा हट जाएगा कि ब्लैक होल द्वारा निगल ली गई वस्तुओं और जानकारियों का आखिर हुआ क्या?

इस नए शोध से पहले हाकिंग भी यह मानते थे कि ब्लैक होल में समा गई सारी वस्तुएं खो जाती है। लेकिन अब उन्होंने इस शोध में बताया है कि ब्लैक होल के भीतर समा गई वस्तुओं के बारे में फिर से पता लगना संभव है। अब तक वैज्ञानिकों का मानना था कि ब्लैक होल सपाट होते हैं। लेकिन हॉकिंग का कहना है कि ब्लैक होल असल में मुलायम बालों सरीखे आभामंडल से घिरे रहते हैं। लेकिन हॉकिंग के इस दावे का यह मतलब कतई न निकालें कि आप ब्लैक होल में गोता लगाएं और दूसरी तरफ से साबुत जिंदा बच कर निकल जाएं। दरअसल इसका मतलब यह है कि आपकी जानकारी वहां सुरक्षित रहेगी न कि आपका शरीर। बीते कल की जानकारियों का रिसाव इसमें संभव है।

भौतिकी के सभी नियम 'ब्लैक होल' पर बेकार

अगर आप ब्लैक होल में गिर जाएं तो क्या होगा? शायद आप सोचते हों कि आपकी मौत हो जाएगी। ऐसा संभव तो है लेकिन इसके अलावा कई और भी चीजें वहां आपके साथ हो सकती हैं। दरअसल ब्लैक होल अंतरिक्ष में वह जगह है जहाँ भौतिक विज्ञान का कोई नियम काम नहीं करता क्योंकि इसका गुरुत्वाकर्षण बल बहुत शक्तिशाली होता है। इसके खिंचाव से कुछ भी नहीं बच सकता। प्रकाश भी यहां प्रवेश करने के बाद बाहर नहीं निकल पाता है। यह अपने ऊपर पड़ने वाले सारे प्रकाश को अवशोषित कर लेता है। इसलिए यह एक अंधकारमय गुफा की तरह होता है जिसमें

कोई भी वस्तु विलीन हो जाएगी। ब्लैक होल के बाहरी हिस्से को 'इवेन्ट हॉराइजन' कहते हैं। क्वांटम प्रभाव के कारण इससे गर्म कण टूट–टूट कर ब्रह्मांड में फैलने लगते हैं। स्टीफन हॉकिंग की खोज के मुताबिक हॉकिंग रेडिएशन के चलते एक दिन ब्लैक होल पूरी तरह संहति या द्रव्यमान मुक्त हो कर गायब हो सकता है। ब्लैक होल का केंद्र असीम घुमावदार होता है। इसमें प्रवेश करते ही भौतिक विज्ञान का कोई नियम काम नहीं करता। यहां पहुंचने के बाद क्या होगा, यह कोई नहीं जानता, क्योंकि अभी तक वहां कोई भी नहीं पहुंच सका है। इसके अंदर है। यह अपने मेजबान गैलेक्सी एडीसी 1277 की 14 फीसदी संहति (द्रव्यमान) अपने अंदर समा लेगा। 1972 में सबसे पहले सिग्नस एक्स–1 के बी स्टार की ब्लैक होल के रूप में पहचान हुई। अब तो ब्रह्मांड को टटोलने के लिए सबसे बड़ी मशीनी आंख बनाई जा रही है। इससे मिलने वाली तस्वीरें नासा की हबल दूरबीन से 15 गुना ज्यादा साफ दिखाई देंगी। यूरोपियन (अति बृहत्) टेलिस्कोप बनाने की शुरुआती प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। 40 करोड़ यूरो का प्रोजेक्ट यूरोपियन सदर्न ऑब्जरवेट्री को मिला है। यूरोपियन अति बृहत् टेलिस्कोप (ई–ईएलटी), इंसानी इतिहास की सबसे बड़ी दूरबीन होगी। इसे उत्तरी चिली में 3,000 मीटर ऊंची सेरो अर्माजोनेस पहाड़ी पर स्थापित किया जायेगा। ई–ईएलटी दूरबीन के मुख्य दर्पण का व्यास 40 मीटर होगा। ऐसी आशा है कि ई–ईएलटी ऐसी खोजें करेगी जिनकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते, जिसमें ब्लैक होल का रहस्य भी शामिल है।

बड़े ब्लैक होल की खोज

वैज्ञानिकों ने ब्रह्मांड में एक बहुत ही बड़ा ब्लैक होल खोजा है। आकार में यह 12 अरब सूर्यों से भी ज्यादा बड़ा है और धीरे–धीरे एक–एक करके आकाशगंगा को निगल रहा है। यह खोज बीजिंग की शुई–बिंग वू यूनिवर्सिटी के अंतर्राष्ट्रीय शोधकत्ताओं के दल ने की है। वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि यह ब्लैक होल ब्रह्मांड की शुरुआत के दौरान बना होगा। यह ब्लैक होल धीरे–धीरे ब्रह्मांड में मौजूद ग्रहों, तारों, पिंडो को निगलता जा रहा है। इसका द्रव्यमान बहुत ही ज्यादा है, जिसके कारण इसकी आकर्षण क्षमता बहुत अधिक है। यह अपने करीब आने वाली हर चीज को निगल लेता है। आम ब्लैक होल की ही तरह यह विशाल ब्लैक होल भी एक आकाशगंगा का केंद्र है। अपने आस पास मौजूद गैस, धूल और तारों को निगलने की वजह से इसका आकार लगातार बढ़ता जा रहा है। जब कोई पिंड ब्लैक होल में प्रवेश करता है तो उससे एक तेज रोशनी निकलती है। यह रोशनी ब्लैक होल में घुसने की प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न हुई अथाह गर्मी से पैदा होती है।

काले नहीं हैं अंध विवर (ब्लैक होल)

लोग सोचते होगें कि ब्लैक होल काला छिद्र जैसा होगा, ऐसा नहीं है। विशाल ब्लैक होल काफी चमकीले होते हैं। वैज्ञानिकों का दावा है कि ये विशाल अंध विवर हमारे सूर्य से 4,200 खरब गुना ज्यादा चमकीले हैं। वैज्ञानिक खुद भी इन आंकड़ों से हैरान हैं। ऐसा अनुमान है कि यह ब्लैक होल जरूर ब्रह्मांड की उत्पत्ति के दौरान ही बना

होगा। यह ब्लैक होल धरती से 12.8 अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। इस ब्लैक होल से निकलने वाला प्रकाश हम तक 12.8 अरब प्रकाश वर्ष की यात्रा करके पहुंच रहा है। चूंकि हमारा ब्रह्मांड 90 करोड़ साल पुराना है इसी आधार पर कहा जा रहा है कि यह ब्रह्मांड की उत्पत्ति के दौरान ही बना होगा। वैज्ञानिकों को आशा है कि क्वेजार से ब्रह्मांड के अनेक रहस्य खुलेगें। किसी आकाशगंगा के केंद्र में मौजूद बड़े और अति चमकीले ब्लैक होल को क्वेजार कहा जाता है। हाल ही में खोजे गए क्वेजार से रहस्यों से पर्दा उठा। वैज्ञानिकों को अपने सिद्धांत को आगे बढ़ाना पड़ा और हर कण का विशेष गुणों वाला भागीदार खोजना पड़ा। इन्हें सुपरसीमेट्रिक पार्टिकल्स कहा जा रहा है। एलएचसी (लार्ज हेड्रोन कोलाइडर) में इन्हीं सुपरसीमेट्रिक पार्टिकल्स को ट्रैक करने की कोशिश की जा रही है। अगर ऐसा हुआ तो यूनीफाइड फील्ड थ्योरी कहे जाने वाले सिद्धांत की तरफ एक बड़ा कदम होगा जो ब्लैक होल के रहस्य से और पर्दा उठा पाएगा।

आकाशगंगाओं का मेला

यह बात जानकर आपको आश्चर्य होगा कि ब्रह्मांड में अरबों आकाशगंगाएं हैं। ऐसे ब्लैक होल भी हैं जिनकी अभी खोज नहीं हो पाई है। दिलचस्प बात तो यह है कि इनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। अब आप अंदाजा लगा सकते हैं कि यह ब्रह्मांड कितना विशाल है। इसीलिए इसकी सीमा का कोई अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है। हमारी अपनी आकाशगंगा अर्थात् मिल्की वे की एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचने में एक लाख वर्ष लग जाएंगे। दरअसल, एडविन पॉवेल हब्बल द्वारा बनाई गई दूरबीन की सहायता से ही हम ब्रह्मांड की इन आकाशगंगाओं के बारे में इतनी जानकारियां जुटा पाए हैं। आकाशगंगाओं के इस समूह में सभी के आकार एक समान नहीं हैं। कुछ छोटी और बड़ी भी हैं। आईसी 1101 आकाशगंगा ब्रह्मांड की सबसे बड़ी आकाशगंगा है। यह हमारी आकाशगंगा से 60 गुणा बड़ी है और हमारी आकाशगंगा से इसकी दूरी एक लाख बिलियन प्रकाश वर्ष है। यहां एक बिलियन प्रकाश वर्ष का अर्थ है एक अरब प्रकाश वर्ष। यानी यह आकाशगंगा हमारी आकाशगंगा के करीब ही है। इसको विलिमन 1 कहते हैं। वर्ष 2004 में खोजी गई यह आकाशगंगा से आईसी 1101 की दूरी एक लाख अरब प्रकाश वर्ष है। इस तरह सबसे छोटी अकाशगंगा हमारी आकाशगंगा से 1 लाख 20 हजार प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। इसकी खोज जर्मनी में स्थित मैक्स प्लैंक इंस्टीटयूट के निकोलस मार्टिन की टीम ने की थी। सबसे नजदीकी आकाशगंगा के बारे में कुछ लोगों को शंका है। वैसे कुछ लोग एंड्रोमेडा को नजदीकी आकाशगंगा मानते हैं, लेकिन नवीनतम शोध में पाया गया है कि केनिस मेजर ड्वार्फ आकाशगंगा हमारी आकाशगंगा के सबसे करीब है। यह वैसे तो हमारी आकाशगंगा के केंद्र से 42 हजार प्रकाश वर्ष की दूरी पर है, लेकिन हमारे सौरमंडल से इसकी दूरी सिर्फ 25 हजार प्रकाश वर्ष ही है, जबकि हमारी आकाशगंगा का केंद्र 30 हजार प्रकाश वर्ष की दूरी पर है।

टकराती आकाशगंगाएं

वैसे तो आकाशगंगाएं एक–दूसरे से हजारों–लाखों प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं, फिर भी वे कई बार टकरा जाती हैं। इनके टकराने से ब्लैक होल के निर्माण की संभावना बन सकती है। केनिस मेजर ड्वार्फ आकाशगंगा हमसे सिर्फ 25 हजार प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। इसके टकराने की संभावना ज्यादा है। आपस में टकराव की वजह से कई बार उन आकाशगंगाओं में सितारों का निर्माण रुक जाता है। अमेरिकी प्रोफेसर जैफ्री केनी व उनकी टीम ने पता लगाया है कि एम 86 व एनजीसी 4438 आकाशगंगाओं के बीच कभी टक्कर हुई थी जिससे उनमें तारों का निर्माण रुक गया। ऐसा अनुमान है कि इन दोनों आकाशगंगाओं के बीच जबर्दस्त टक्कर हुई थी। ये आकाशगंगाएं धरती से लगभग 5 करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित हैं। आकाशगंगाएं टकराने के साथ जन्म भी लेती हैं। 1950 के दशक में सामने आए सिद्धांत को महाविस्फोट का सिद्धांत, यानी द बिग बैंग थ्योरी कहा गया। इस सिद्धांत के तहत माना गया कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति एक महाविस्फोट से हुई है। यह सिद्धांत आकाशगंगाओं के प्रकाश में पाए जाने वाले डाप्लर प्रभाव पर आधारित था। लेकिन कुछ वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि आकाशगंगा की उत्पत्ति का कारण केवल यही सिद्धांत नहीं है। महाविस्फोट की घटना के बीते 78.7 करोड़ साल अभी भी रहस्य के घेरे में है। आने वाला समय ही बताएगा कि इन रहस्यों से पर्दा कब उठेगा। ऐसी संभावना भी है कि एक दिन बड़े ब्लैक होल हमारी धरती को भी न अपने में समा लें। अगर ऐसा हुआ तो फिर नई सृष्टि की रचना होगी।

OOO

15

विज्ञान–समाचार

डॉ. दीपक कोहली

अब धरती पर चांद और मंगल की सब्जियांः खाने के खास शौकीनों के लिए, विशेष खबर है। उनके लिए मंगल और चांद की सब्जियां भी हाजिर हैं। विज्ञानियों ने मंगल व चांद जैसी कृत्रिम मिट्टी बना कर उसमें टमाटर, मटर समेत दस तरह की सब्जियां विशेष प्रयोगशाला में उगाने में सफलता हासिल की है। संरचना, खनिज, रसायन, पोषक तत्वों में समानता रखने वाली चांद और मंगल जैसी मिट्टी बनाने के लिए हवाई द्वीप के ज्वालामुखी और एरिजोना रेगिस्तान से मिट्टी लाई गई।

नीदरलैंड की 'वेगेनीजन यूनिवर्सिटी एंड रिसर्च सेन्टर' की टीम ने अपने दूसरे प्रयास में कामयाबी हासिल कर ली। उन्होंने टमाटर, मटर के साथ पालक, मूली तथा सलाद में काम आने वाली कई अन्य सब्जियां उगाई। अब विज्ञानी यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि खाने की दृष्टि से ये सब्जियां सुरक्षित हैं या नहीं।

जब तक शोध पूरा नहीं होगा तब तक किसी को ये खाने नहीं दी जाएंगी। संभावना है कि इनमें कई भारी या जहरीले तत्व हो सकते हैं क्योंकि कृत्रिम मिट्टी में भारी तत्वों की भरमार है। ये तत्व हैं सीसा, आयरन, आर्सेनिक और पारा। तीसरा चरण ऐसी सब्जियों को पूरी तरह सुरक्षित बनाने पर ही पूर्ण रूप से केंद्रित रहेगा।

वैसे देखने में टमाटर, मटर ऐसे हैं कि तुरंत खाने को दिल चाहे। सब्जियां उगाते वक्त वनस्पति खाद को नियंत्रक के रूप में इस्तेमाल किया गया। विज्ञानियों को चांद और मंगल की मिट्टी के नमूने नासा ने उपलब्ध करवाए।

चांद जैसी कृत्रिम मिट्टी के परिणाम् अत्यधिक उत्साहजनक रहे। पहले शोध के दौरान उगाई गई अधिकतर सब्जियां नष्ट हो गई थी, इस बार ऐसा नहीं हुआ। इस बार शोधकर्ताओं ने गमले के बजाय ट्रे में पौधे उगाए। मंगल जैसी मिट्टी में उत्पादन कम हुआ जिससे शोधकर्ताओं को कुछ निराशा भी हुई।

प्लास्टिक को ठिकाने लगाएंगे जीवाणु (बैक्टीरिया):

दुनिया भर में पर्यावरण के लिए खतरा बन चुके प्लास्टिक को जल्द जीवाणु की मदद से ठिकाने लगाया जा सकेगा। दरअसल जापान के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जीवाणु **ईडियोनेला सैकियेन्सिस** की खोजी की है, जो प्लास्टिक को खण्डित करता है। शोधकर्ताओ को उम्मीद है कि उनकी इस खोज से प्रदूषण की समस्या को काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

जापान में स्थित 'क्योरो इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलोजी के वैज्ञानिक योशिदा एवं उनके शोधकर्ता सहयोगियो' ने पाया कि ईडियोनेला सेकियेपन्सिस बैक्टीरिया पॉलिथीन टेरापैथलेट (पीईटी) के यौगिक को खंडित कर सकते हैं। शोधकर्ताओं ने बताया कि यह बैक्टीरिया पीईटी को हाइड्रोलाइज (विखडिंत कर पानी में बदलने की प्रक्रिया) करने के लिए दो एंजाइम का प्रयोग करते हैं। यह एंजाइम बैक्टीरिया की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए पीईटी के साथ प्रक्रिया कर उन्हें मौलिक तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं। यह शोध प्रतिष्ठित शोध पत्रिका, 'साइंस' (अमेरिका) में प्रकाशित हुआ है।

आपके दर्द को समझ सकेंगे रोबोट

हमारे विज्ञान की अब कोई सीमा नहीं रह गई है। कल कुछ ऐसा भी सुनने में आ सकता है कि आपका जोड़ीदार आपके सामने खड़ा हुआ है। आज वैज्ञानिकों ने इंसान की सुविधाओं के लिए कई प्रकार की मशीनें और रोबोट बना दिए हैं, जो उन्हें विभिन्न प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं। लेकिन आपने ऐसा कोई रोबोट सुना है जो आपके हाव–भाव पढ़ ले या आपके द्वारा सोची गई बात आपके मुंह से बाहर आने से पहले ही समझ लें।

जी हाँ, तरक्की करते विज्ञान ने ऐसा रोबोट बना लिए हैं, जो आपके भाव (इमोशन्स) को पढ़ लेता है। इंटेल ने एक ऐसा ही रोबोट बनाया हैं इसका नाम जिमी रखा गया है। यह रोबोट आपके पीछे–पीछे चलता है और आपके इमोशन्स को पढ़ता है और उन्हें बदलने का प्रयास भी करता है। इस रोबोट में इन बिल्ट 3–डी सेन्सिंग तकनीक का उपयोग किया गया है। यह रोबोट आप ही की तरह दुनिया को देखने में समर्थ है और आपके भावों को पहचान सकता है।

तीस वर्ष बर्फ में जमे रहने के बाद जिंदा निकला

संभव है कि आपने वाटर बीयर का नाम सुना हो और इस बात की भी संभावना अधिक है कि आपने इसे देखा नहीं हो, लेकिन इस छोटे से समुद्री जीव की एक विशेषता ऐसी है जो कि आपको आश्चर्य में डाल सकता है।

जापान स्थित 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पोलर रिसर्च', टोकियों की प्रयोगशाला में यह जीव 20डिग्री सेल्सियस तापमान में कम से कम 30 वर्ष तक बर्फ में जमा रहा लेकिन एक लंबी अवधि के बाद यह जीव फिर से जीवित हो गया। इस बात से वैज्ञानिकों को हैरानी कि यह कैसे और क्यों संभव हुआ?

वर्ष 1983 में जापान के वैज्ञानिकों का एक दल अंटार्कटिका गया था। उस समय बर्फ में ये जीव भी जमा थे। उस समय ये जीव मृत अवस्था में थे और शोध दल इन्हें लेकर जापान वापस आ गए तब वैज्ञानिकों ने इन जीवों को गर्मी देने की बजाय बर्फ के एक बॉक्स में रख दिया। यह बॉक्स तीस वर्ष तक ऐसे ही पड़ा रहा। विदित हो कि वैज्ञानिकों ने इन जीवों को दशकों तक माइनस 20 डिग्री के तापमान में रहने दिया। बाद में, शोधकर्ताओं के एक अन्य दल ने इन जीवों को बक्से से बाहर निकाला और इन्हें पोषक तत्वों से भरी एक नली में रख दिया। इसके साथ ही वैज्ञानिकों ने ऐसा देखा कि वे खुश हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने एक वाटर बीयर को कुलबुलाने की हालत में देखा। इस प्राणी को वैज्ञानिक 'स्लीपिंग ब्यूटी' के नाम से भी पुकारते हैं। वैज्ञानिकों ने पाया कि वाटर बियर जिंदा हो गया और अंडे देने का काम भी करने लगा। इस शोध की जानकारी अमेरिकन जर्नल 'क्रायोबॉयोलॉजी' में दी गयी है। इन विचित्र जीवों के बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि ये जीव खुद को किसी भी हालत में ढाल लेते हैं और इनमें वर्षों बाद भी जीवित होने के चिह्न नजर आने लगते हैं।

चूहे भी करते हैं बॉडी लैंग्वेज का इस्तेमाल:

चूहे भी इंसानों की तरह कायिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज) का इस्तेमाल करते हैं और इसलिए मानव मस्तिष्कीय ढांचे और इसके संचालन को बेहतर ढंग से समझने के लिए उनकी कार्यपद्धति का अध्ययन किया जा रहा है।

'हॉवर्ड मेडिकल स्कूल', यूनाइटेड स्टेट्स में न्यूरोबायोलॉजी के सहायक प्रोफेसर संदीप दत्ता के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने चूहों की शारीरिक गतिविधियों को समझने के लिए एक नई तकनीक विकसित की है। प्रतिष्ठित जर्नल 'न्यूरॉन' (अमेरिका) में प्रकाशित इस शोध कार्य के अंतर्गत न्यूरोसाइन्स में मानवीय व्यवहार की समझ के आधार पर वर्गीकृत व्यवहार की विशेषता न समझ पाने जैसी दीर्घकालिक समस्या के निदान के लिए समाधन भी बताया गया है।

प्रमुख शोधकर्ता संदीप दत्ता ने बताया कि अगर आप मस्तिष्क में देखें, तो पाएंगे कि किसी भी व्यक्ति की मस्तिष्क कोशिका जानवरों के व्यवहार पर किस प्रकार की प्रतिक्रिया देती है, तो पता चलता है कि दिमाग पूरी तरह से शोरगुल वाला स्थान है। दत्ता ने कहा कि इस विधि के जरिए एक नई जानकारी यह हासिल की जा सकती है कि मस्तिष्क में व्यवहार किस प्रकार उत्पन्न होता है और किसी बीमारी के दौरान इसकी प्रतिक्रिया कैसी होती है।

शोधकर्ताओं की टीम को उम्मीद है कि यह विधि इन्सान के स्वयं की मस्तिष्कीय कार्यवाही को बेहतर ढंग से समझने के लिए सहायक होगी। दत्ता व उनके सहयोगी शोधकर्मियों की टीम ने यह अनुसंधान चूहों के व्यवहार पर अध्ययन करने के लिए शुरू किया था। शोधकर्ताओं ने इसके लिए चूहों की हर गतिविधि का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया कि वे कैसे किसी भी चीज पर प्रतिक्रिया देते हैं।

मेंढक की नई जाति मिली

'सेन्टर फॉर सेल्युलर ऐन्ड मोलिक्यूलर बॉयोलॉजी' (सी.सी.एम.बी.), हैदराबाद के वैज्ञानिकों ने अंडमान द्वीप में एक मेंढक की नई जाति को खोज निकाला है। झाड़ियों में रहने वाली मेंढक की इस नई जाति का नाम 'अंडमान बुश टोड' रखा गया है। वैज्ञानिक डॉ. रमेश के. अग्रवाल और उनके सहयोगियों ने इस मेंढ़क की आकृति और कंकाल संरचना की प्रकृति का अध्ययन एवं मॉलिक्यूलर फायलोजेनेटिक विश्लेषण करके इस नई जाति का पता लगाया है।

21 से 27 मिलीमीटर आकार के ये मेंढक आमतौर पर रात में अधिक सक्रिय रहते हैं और झाड़ियों के बीच फुदकते हैं। दिन के समय ये जमीन पर फैले पत्तों के बीच छिपे रहते हैं। इनका रंग लालिमा लिए हुए भूरा होता है और इनकी पीठ पर गहरे भूरे रंग के 'वी' के आकार के दो निशान होते हैं। यह शोध विज्ञान जर्नल 'जू कीज' (अमेरिका) में प्रकाशित हुआ है।

अकाल व सूखे के खिलाफ लड़ने वाले नए जीन की खोज

अकाल और सूखे की चपेट से कृषि उत्पादों को बचाने के लिए नई खोजों में जुटे वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जीन का पता लगाया है, जो पौधों को विपरीत परिस्थितियों में भी फलने–फूलने में मदद देगा।

हांगकांग विश्वविद्यालय, हांगकांग की यह खोज प्रतिष्ठित जर्नल 'प्लांट सेल एंड एनवायरमेंट' में प्रकाशित हुई है। प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया है कि दुनिया भर के वैज्ञानिक लंबे समय से ऐसी तकनीक की खोज में जुटे थे जिससे पौधों के अंदर सूखे और अकाल के खिलाफ लड़ने की क्षमता विकसित की जा सके। कई देशों में अकाल और सूखे की समस्या बहुत गंभीर है। कई देशों में किसान फसल के नुकसान के कारण आत्महत्या करते हैं। ग्लोबल वार्मिंग (वैश्विक तापवृद्धि) के कारण इस समस्या के अधिक गंभीर होने की संभावनाएं हैं।

दरअसल ग्लोबल वार्मिंग के कारण पानी और जमीन की सतह से भाप बनकर उड़ने वाली नमी की मात्रा अधिक हो जाती है, जिससे दुनिया भर के कई हिस्सों में सूखे की स्थिति पैदा होती है। समय के साथ–साथ जैसे–जैसे वैश्विक तापमान मे वृद्धि होती रहेगी, वैसे–वैसे दुनिया भर में अकाल और सूखाग्रस्त इलाकों में बढ़ोतरी होती रहेगी। इसके कारण पूरे विश्व को खाद्यान्न की कमी के गंभीर संकट से जूझना होगा।

पिछले कुछ वर्षों से वैज्ञानिक इस समस्या को हल करने मे जुटे थे। वे इस बात पर शोध कर रहे थे कि किस तरह पौधों के अंदर ही सूखे से लड़ने की क्षमता बढ़ाई जा सके ताकि शुष्क मौसम में भी फसल के उत्पादन पर कोई असर न पड़े। हांगकांग विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने एक मॉडल पौधे एराबाइडोपसिस थैलियाना में एक ऐसे जीन को पहचाना है, जो एकाइल–सीओए–बाइडिंग प्रोटीन को इनकोड करता है, जिससे पौधों में सूखे से लड़ने की क्षमता विकसित होती है।

शोधकर्ता प्रोफेसर सी.मी.लेन., विल्सन तथा एमेलिया वांग ने पाया कि इस प्रोटीन के कारण ही एराबाइडोपसिस पौधे में सूखे से लड़ने की क्षमता पैदा होती है। प्रोफेसर लेन ने बताया कि सूखे से लड़ने के कारण पौधों का विकास अवरुद्ध होता है और साथ ही उत्पादन क्षमता भी घटती है। पत्तियों और तनों में मौजूद स्टोमेटा पौधों द्वारा छोड़ी गई वाष्प के लिए जिम्मेदार होते हैं और यह प्रोटीन स्टोमेटा को नियंत्रित करके पौधे को सूखे से लड़ने के लिए तैयार करता है।

प्राचीन चट्टानों से निकाले गए हीरों ने किया धरती के निर्माण का रहस्य उजागर

दक्षिण अफ्रीका की प्राचीन (1890 से 1930 के बीच बनी) चट्टानों की खुदाई से निकले हीरों ने साढ़े तीन अरब वर्ष पहले हुए पृथ्वी के निर्माण से जुड़े रहस्यों को उजागर किया है।

यह जानकारी एक नए अध्ययन में सामने आई है। जोहान्सबर्ग की सोने की खानों की चट्टानों से निकाले गए हीरों का अध्ययन दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग विश्वविद्यालय और कनाडा के अल्बेर्टा विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने किया है। इसका उद्देश्य यह पता लगाना है कि पृथ्वी पर आधुनिक विवर्तनिक (टेक्टोनिक) प्लेटें कब सक्रिय हुई।

पृथ्वी लगभग साढ़े चार अरब साल पुरानी है और जब एक चट्टान का चार अरब साल पहले का रिकार्ड मौजूद है तो ऐसे में पृथ्वी की सतह पर बेहद प्राचीन चट्टानों के जटिल संरक्षक इतिहास पर बहस छिड़ गई है कि टेक्टोनिक्स प्लेटें यहाँ सक्रिय कब हुई? कई शोधकर्ताओं का मानना है कि इन प्लेटों की शुरुआत चार से ढ़ाई अरब साल पहले हुई, जबकि सही समय पर अभी भी मतभेद हैं।

दिमाग के इशारे पर चलेगी व्हील चेयर

देश में पहली बार ऐसी व्हील चेयर बनाई गई है जो दिमाग के इशारे पर चलेगी और दिव्यांग (विकलांग) व्यक्ति जहां जाना चाहेगा, केवल सोचने भर से वहां पहुंच सकेगा। इस व्हील चेयर का निर्माण, ए–सेट ट्रेनिंग एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली ने किया है। यह पूरी तरह से भारत में ही निर्मित है और इसके प्रत्येक हिस्से का निर्माण भारत में स्वदेशी तकनीक से क़िया गया है।

चेयर का निर्माण करने वाली कंपनी का दावा है कि यह दिमाग के इशारे पर काम करने वाली दुनिया की पहली व्हील चेयर है। यह बाजार में जल्दी ही उपलब्ध होगी। शोध केंद्र के प्रमुख श्री दिवाकर वैश ने बताया है कि यह व्हील चेयर संवेदक (सेन्सर) से संचालित होती है और संवेदक को विकलांग व्यक्ति के सिर पर लगाना पड़ता है। विकलांग व्यक्ति जो सोचेगा व्हील चेयर उसके एक से डेढ़ मिनट के बाद सोची गई जगह के लिए चलना शुरू कर देगी।

उनका कहना है कि यह व्हील चेयर उन लोगों के लिए बहुत उपयोगी है जो हिल–डुल नहीं सकते और यहां तक कि सिर भी नहीं हिला सकते लेकिन इसका इस्तेमाल करके वह जहां जाना

चाहे, वहां पहुंच सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस व्हील चेयर को खरीदने वाले को एक सप्ताह का प्रशिक्षण दिया जाएगा, इस दौरान उसे इसके संचालन का तरीका बताया जाएगा।

आवाज के आधार पर सामान को दूसरी जगह ले जाएगा उपकरण

वैज्ञानिकों ने एक अनूठी स्वनिक कर्षक किरणपुंज (सोनिक ट्रैक्टर बीम) का विकास किया है जो ध्वनि तरंगों का उपयोग कर वस्तुओं को उठाने और एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सक्षम होगा।

अनुसंधानकर्ताओं ने जो स्वनिक कर्षक किरणपुंज विकसित किया है, उसमें एक ध्वनिक होलोग्राम उत्पन्न करने के लिए उच्च क्षमता की ध्वनि तरंगों का इस्तेमाल किया जाता है जो छोटी वस्तुओं को उठाने और एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सक्षम होता है।

ट्रैक्टर बीम का अभिप्राय एक ऐसे उपकरण से है जो शारीरिक संपर्क के बगैर किसी भी वस्तु को खींच लेता है। विज्ञान कथा लेखकों की रचनाओं और स्टार ट्रेक जैसे प्रोग्रामों में सामान को पकड़ने, उठाने और एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए ट्रैक्टर बीम की अवधारणा का उपयोग किया गया है, जिससे वैज्ञानिक और इंजीनियर बहुत हद तक प्रभावित हुए। अल्ट्राहैप्टिक्स के सहयोग से ब्रिस्टल विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड तथा ससेक्स विश्वविद्यालय, इंग्लैन्ड के शोधकर्ताओं ने इस तकनीक का विकास किया है। आने वाले समय में व्यापक तौर पर इस तकनीक का उपयोग किया जा सकता है। इस अध्ययन का प्रकाशन 'नेचर कम्युनिकेशन्स' (इंगलैंड) नामक जर्नल में हुआ है।

अब केवल प्रकाश से ही अपने आप साफ हो जाएंगे कपड़े

शोधकर्ताओं ने ऐसी तकनीक विकसित की है जिससे कपड़ों को बल्ब की रोशनी या धूप के प्रकाश में छह मिनट तक रखने पर ही वे खुद साफ हो जाते हैं।

यह खबर खास कर महिलाओं के लिए है, क्योंकि अगर उनके घरेलू कामों में से कपड़े धोने के काम को निकाल दिया जाए तो उनके पास बहुत सारा वक्त बच जाता है। बहुत जल्द कपड़ों को साफ रखने के लिए उन्हें धोने की जरुरत खत्म हो जाएगी। शोधकर्ताओं ने ऐसी तकनीक विकसित की है जिससे कपड़ों को बल्ब की रोशनी या धूप में छह मिनट तक रखने पर ही वे खुद साफ हो जाते हैं।

मेलबर्न, आस्ट्रेलिया के आरएमआईटी विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने विशेष नैनो तकनीक से एक कपड़ा तैयार किया है, यह प्रकाश में अपने आप साफ हो जाता है। शोधकर्ताओं के दल में एक भारतीय मूल के वैज्ञानिक भी सम्मिलित हैं।

शोधकर्ता राजेश रामनाथन ने बताया कि हालांकि वह समय अभी दूर है जब आप अपनी वाशिंग मशीन को गुड बाय कहेंगे, लेकिन इस शोध से भविष्य में खुद साफ होने वाले कपड़ों के विकास के लिए मजबूत आधार तैयार हुआ है।

शोधकर्ताओं ने यह कपड़ा चांदी और तांबा आधारित नैनो संरचनाओं से विकसित किया है। यह प्रकाश को सोखने की क्षमता के लिए जाने जाते हैं। जब इन नैनो संरचनाओं पर प्रकाश डाला जाता है तो इनमें ऊर्जा के संचार से गर्म इलेक्ट्रॉन निकलते हैं, ये गर्म इलेक्ट्रॉन ढेर सारी ऊर्जा जारी करते हैं, जिससे यह कपड़ा कार्बनिक पदार्थो (धूल–मिट्टी) को हटा देता है।

अब शोधकर्ताओं के लिए इस कपड़े को प्रयोगशाला से निकालकर वाणिज्यिक उत्पादन के लायक बनाने की चुनौती है। शोधकर्ता रामनाथन के अनुसार कपड़ा कार्बनिक पदार्थ तो साफ कर लेता है, लेकिन जैविक पदार्थों को भी साफ करने लायक बनाने की चुनौती है। तब ही इसे आम आदमी इस्तेमाल कर सकेगा।

प्रदूषण का समाधान करेगी त्रिविम (थ्री डी) छपाई

अमरीकी शोधकर्ताओं की एक टीम ने त्रिविम मुद्रण (थ्री–डी प्रिंटिंग) तकनीक के माध्यम से हथेली में समा जाने वाली एक 'स्पॉन्ज' जैसी संरचना तैयार की है, जो प्रदूषण को कम करने में कारगर साबित हो सकती है। 'द अमेरिकन यूनिवर्सिटी, वाशिंगटन डी. सी.', अमेरिका के रासायनिक शास्त्र के प्रोफेसर मैथ्यू हार्टिंग्स के नेतृत्व में शोधकर्ताओं ने दर्शाया कि कैसे सक्रिय रसायन विज्ञान के साथ वाणिज्यिक त्रिविम मुद्रक (थ्री. डी प्रिंटर) का उपयोग कर एक संरचना बनाई जा सकती है।

शोधकर्ताओं की टीम ने 'थ्री–डी प्रिंटिंग' प्रक्रिया के दौरान रासायनिक सक्रिय टाइटेनियम डाईऑक्साइड के नैनो कणों को मिलाकर 'स्पान्ज' के समान एक प्लास्टिक सांचे का निर्माण किया। टीम ने देखा कि प्रकाश के टाइटेनियम डाईऑक्साइड के संपर्क में आने के बाद किस तरह प्रदूषण छंट जाएगा। इससे यह साबित हुआ कि इस प्रक्रिया में पानी, वायु और कृषि स्रोतों से प्रदूषण को समाप्त करने की क्षमता है। प्रदूषण उपशमन को प्रदर्शित करने के लिए शोधकर्ताओं ने 'स्पॉन्ज' के समान तैयार प्लास्टिक के सांचे को पानी में डाला और इसमें एक जैविक अणु (प्रदूषण) भी मिलाया, जिसमें प्रदूषक नष्ट हो गया।

सूर्य के प्रकाश से उर्वरक बनाने का अनूठा तरीका

वैज्ञानिकों ने सूर्य का प्रकाश इस्तेमाल करके उर्वरक के मुख्य घटक अमोनिया की एक नई पर्यावरणोन्मुखी किस्म का निर्माण किया है। अमेरिका के ऊर्जा मंत्रालय की राष्ट्रीय अक्षय ऊर्जा प्रयोगशाला 'एनआरईएल' और कोलरेडो बोल्डर यूनिवर्सिटी, अमेरिका के अनुसंधानकर्ताओं ने पाया कि प्रकाश की उपस्थिति में कैडमियम सल्फाइड यौगिक के नैनो आकार के कणों का इस्तेमाल करने से रासायनिक परिवर्तन के दौरान इलेक्ट्रान में इतनी ऊर्जा जुड़ जाती है कि इसके कारण नाइट्रोजन 'एन–2' अमोनिया में परिवर्तित हो जाती है।

जीवों के प्रयोग के लिए धरती के वातावरण में नाइट्रोजन एक आम गैस है। पारंपरिक तौर पर नाइट्रोजन परिवर्तन के दो मुख्य तरीके हैं–पहली, जैविक प्रक्रिया है, जिसमें वातावरण में मौजूद नाइट्रोजन लेग्युमिनस पादपों की जडों में पाए

जाने वाले जीवाणु के संपर्क में आती है और फिर नाइट्रोजिनेज नामक एंजाइम की उपस्थिति में अमोनिया में परिवर्तित हो जाती है। दूसरी, हैबर–बॉश प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में उच्च ताप और दाब पर जटिल प्रक्रियाओं से गुजारकर नाइट्रोजन 'एन–2' को अमेनिया में बदला जाता है। हैबर–बॉश प्रक्रिया में जीवाश्म ईंधन के प्रयोग की आवश्यकता होती है, जिसके चलते ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में वृद्धि होती है।

अनुसंधानकर्ताओं ने बताया कि अमोनिया का निर्माण करने वाली प्रकाश संचालित नई रासायनिक प्रक्रिया से नियंत्रण स्तर पर कृषि को बढ़ावा मिलेगा और जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता घटेगी। प्रमुख शोधकर्ता गोर्दाना दूकोविच के अनुसार, 'इस प्रक्रिया में सेमीकंडक्टर नैनो–क्रिस्टलों का संयोजन किया जाता है जो नाइट्रोजिनेज के साथ प्राकृतिक उत्परक प्रकाश को अवशोषित करता है और यही नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित करता है, जो कि उर्वरक का मुख्य घटक है।'

अंतरिक्ष में चूहे का भ्रूण बनाया

चीनी वैज्ञानिकों ने पहली बार अंतरिक्ष में चूहे के शुरुआती चरण वाले भ्रूणों को सफलतापूर्वक विकसित करने का दावा किया गया है। चाइनीज एकेडमी ऑफ साइंसेज, बीजिंग, चीन के शोधकर्ता ने बताया कि अंतरिक्ष में प्रक्षेपित एसजे–10 शोध उपग्रह में माइक्रोवेव आकार के चैंबर में चूहे के छह हजार से ज्यादा भ्रूण विकसित किए गए। इनमें से छह सौ भ्रूणों को उच्च रिजोल्यूशन (विभेदन) वाले एक कैमरे के सामने रखा गया जिससे चार दिनों तक हर चार घंटे पर इनकी तस्वीरें ली गई और उन्हें धरती पर भेजा गया।

धरती पर भेजी गई तस्वीरों से दिखाया गया कि दो–कोशिका वाले चरण से भ्रूण का विकास एस जे–10 के प्रक्षेपण के करीब 72 घंटे बाद हुआ। दो–कोशिका वाला चरण एक शुरुआती भ्रूणीय चरण है जिसमें कोशिका के अलग–अलग होने की प्रक्रिया संपन्न होती है। शोधकर्ता दुआन एनकुई के अनुसार इसमें पृथ्वी पर भ्रूणीय विकास के बराबर का ही समय लगा।

बेहतर बैटरियां बनाने में मदद कर सकते हैं जंगली मशरूम

वैज्ञानिकों के एक समूह के एक शोध के अनुसार जंगली मशरूम की एक किस्म से मिलने वाले कार्बन फाइबरों का उपयोग लीथियम आयरन बैटरियों के परंपरागत ग्रेफाइट इलेक्ट्रोडों से बेहतर काम करने वाले एनोड बनाने के लिए किया जा सकता है। वैज्ञानिकों के इस समूह में भारतीय मूल का एक वैज्ञानिक भी शामिल है। शोधकर्ताओं ने **टायरोमेसेस फिसिलिस** नामक जंगली फफूंद की एक जाति से इलेक्ट्रोड बनाए हैं।

अमेरिका के पर्डयू विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत विलास पाल ने कहा, मौजूदा आधुनिक लीथियम–आयन बैटरियों को ऊर्जा घनत्व और बिजली आपूर्ति दोनों के ही मामले में सुधारा जाना चाहिए ताकि वे भविष्य में इलेक्ट्रिक वाहनों में और ग्रिड ऊर्जा–संग्रहण प्रौद्योगिकी में ऊर्जा संग्रहण की मांग को पूरी कर सकें। बैटरियों में दो इलेक्ट्रोड होते हैं– एनोड और कैथोड।

अधिकतर लीथियम आयन बैटरियों में ग्रेफाइट एनोड इस्तेमाल किया जाता है।

लीथियम के आयन एक द्रव में होते हैं, जिसे इलेक्ट्रोलाइट कहते हैं। रिचार्ज किए जाने पर ये आयन एनोड पर संग्रहीत हो जाते हैं। शोधकर्ताओं ने पाया कि जंगली मशरूम **टायरोमेसेस फिसिलिस** से प्राप्त और कोबाल्ट ऑक्साइड नैनोपार्टिकल लगाकर संशोधित किए गए कार्बन फाइबर एनोडों में लगे परंपरागत ग्रेफाइट से बेहतर प्रदर्शन कर सकते हैं। यह शोध, अमेरिकन जर्नल 'सस्टेनेबल केमिस्ट्री एंड इंजीनियरिंग' में प्रकाशित हुआ है।

त्रिविम मुद्रण (थ्रीडी प्रिंट) तकनीक से तैयार हुआ पहला रोबोट

एमआईटी के वैज्ञानिकों ने थ्रीडी प्रिन्टिंग की नई तकनीक का उपयोग करते हुए एक रोबोट विकसित किया है। इस नई तकनीक से एक ही बार में थ्रीडी प्रिंट वाले रोबोट का विकास संभव होगा जिससे एसेंबल करने के झंझट से छुटकारा मिल जाएगा और इससे व्यवसायिक तौर पर त्रिविम मुद्रक (थ्रीडी प्रिंटर) की उपलब्धता संभव हो सकती है।

अमेरिका के 'मेसाचुसेट्स प्रौद्योगिकी संस्थान' (एमआईटी) की अनुसंधानकर्ता डेनिएला रस ने कहा, 'हमारा तरीका जिसे हम लोग प्रिंटेबल हाइड्रोलिक्स कहते हैं, वह कार्यात्मक मशीनों के तेजी से निर्माण की तरफ एक कदम है।' रस के अनुसार, 'आपको एक बैटरी और मोटर के साथ काम करना है और आपके पास एक रोबोट होगा जो प्रिंटर से चलने लायक स्थिति में निकलेगा। अनुसंधानकर्ताओं ने इस तकनीक के जरिए छह पैरों वाले छोटे रोबोट को तैयार किया है।'

अब कांच की जगह पारदर्शी लकड़ी से पाएं घर में उजाला

अब आप खिड़कियों में प्राकृतिक रोशनी के लिए कांच की जगह मजबूत पारदर्शी लकड़ी लगवा सकते हैं, क्योंकि वैज्ञानिकों ने एक नई मजबूत वस्तु की खोज कर ली है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इसका प्रयोग सौर ऊर्जा के पैनल में भी किया जा सकेगा।

स्वीडन के स्टॉकहोम स्थित केटीएच रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के लार्स बरग्लूंड और उनके सहयोगियों ने कहा कि, लोग अक्सर अपने घर में उजाला लाने के लिए कई तरीके अपनाते हैं, जैसे हल्के रंग का पेंट करना, आइनों का प्रयोग करना या फिर काफी सारे लैंप और बल्ब आदि लगाना। लेकिन अगर घर की दीवारें ही पारदर्शी हो जाएं तो यह कृत्रिम रोशनी की जरुरत घटा देगा। साथ ही उसमें होने वाले खर्च में भी कभी आएगी। हाल के शोधों में लकड़ी से पारदर्शी कागज तैयार करने में सफलता मिली है। अब इससे और भी मजबूत सामान बनाने का रास्ता खुल गया है। शोधकर्ता लार्स बरग्नूंड और इनके सहयोगी इस संभावना को आगे बढ़ाने के अनुसंधान में लगे हैं। अब वह दिन दूर नहीं जब हम कांच की जगह पारदर्शी लकड़ी से घर में उजाला पाएंगे।

सुपर अर्थ के नए नक्शे ने खोले लावा क्षेत्र के राज

वैज्ञानिकों ने पहली बार एक 'सुपर अर्थ' ग्रह का बेहद विस्तृत नक्शा तैयार किया है, जिसे दो भागों में बांटा गया है, इसमें पहला हिस्सा पूरी तरह पिघला हुआ और दूसरा अधिकतर ठोस बताया गया है।

नासा के 'स्पिटजर स्पेस टेलीस्कोप' से मिली जानकारी का इस्तेमाल करके शोधकर्ताओं ने पाया कि गर्म पक्ष का तापमान 2500 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच सकता है जबकि ठंडे पक्ष का तापमान लगभग 1100 डिग्री सेल्सियस है।

इस अध्ययन के शीर्ष लेखक और ब्रिटेन के कैंब्रिज विश्वविद्यालय में कार्यरत ब्राइस ओलिवियर डेमोरी ने कहा, 'हालिया नतीजे बताते हैं कि इस ग्रह पर रातें गर्म और दिन बेहद गर्म होते हैं। यह दर्शाता है कि यह पूरे ग्रह पर ऊष्मा का संचरण अच्छी तरह नहीं कर पाता।' डेमोरी के अनुसार 'इसकी व्याख्या दिन के समय रहने वाले वायुमंडल या ग्रह की सतह पर लावा के प्रवाह के माध्यम से की जा सकती है।'

इस अध्ययन के नतीजे एक ऐसे ग्रह की ओर इशारा करते हैं जिस पर वायुमंडल है ही नहीं, ये संभवतः एक लावा क्षेत्र की ओर इशारा करते हैं, जहां लावा रात के समय ठोस हो जाता है और ऊष्मा का संचरण नहीं कर पाता। कैंब्रिज में इंस्टीट्यूट ऑफ एस्ट्रोनॉमी के शोधकर्ताओं ने बताया कि, 'हम चट्टानी बाह्य ग्रहों के वायुमंडलीय सुदूर संवेदन (रिमोट सेन्सिग) के एक नए दौर में प्रवेश कर गए हैं, अब हम किसी चट्टानी बाह्य ग्रह की सतह पर व्यापक स्तर का तापमान वितरण माप सकते हैं।'

पूर्वी अंटार्कटिका पर जमी बर्फ 1.4 करोड़ वर्ष पुरानी है

एक नवीन तकनीक का प्रयोग कर वैज्ञानिकों ने अंटार्कटिका की प्राचीन झील पर जमी बर्फ की चादर के बनने की तिथि का पता लगाया है।

वैज्ञानिकों के अनुसार पूर्वी अंटार्कटिका में बर्फ की यह चादर 1.4 करोड़ वर्ष पुरानी है। यह शोध उस धारणा का समर्थन करता है जिसके अनुसार 30–50 लाख साल पहले प्लायोसीन (अतिनूतन काल) युग के दौरान भी बर्फ की यह चादर बड़े स्तर पर नहीं पिघली थी, हालांकि तब कार्बन डाइआक्साइड की सांद्रता आज ही के समान थी।

अमेरिका की पेन्सिल्वेनिया यूनिवर्सिटी के सहायक प्रोफेसर 'जेन विलिनब्रिंग' का कहना है, प्लायोसीन युग की तुलना कभी–कभी उस धारणा से की जाती है जहां ग्लोबल वार्मिंग के लगातार बढ़ने पर पृथ्वी में होने वाली बड़ी प्राकृतिक घटनाओं के बारे में सोचते हैं।

विलिनब्रिंग के अनुसार, यह शोध हमारी उस उम्मीद को बल देता है जहां पूर्वी अंटार्कटिका की बर्फ की चादर वर्तमान और भविष्य के मौसमों के अनुसार टिकी रह सकती है, कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यह बर्फ की चादर प्लायोसीन युग के

दौरान कुछ स्थितियों में पिघली थी, वहीं कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यह चादर पूरी तरह से 1.4 करोड़ सालों से जमी है।

विलिनब्रिंग और उनके सहयोगियों ने हालांकि इसके इतिहास को स्पष्ट करने की आशा व्यक्त की है। इसके लिए उन्होंने महाद्वीप के पूर्वी हिस्से के मध्य सूखी घाटियों में स्थित अंटार्कटिका के फ्रिस पर्वतों की यात्रा की है। इस झील की लगभग एक फुट के बराबर मोटी बर्फ की चादर के नीचे सतह पर विभिन्न पदार्थों का जमाव है और यह मीठे पानी और विभिन्न जीवश्मों के लिए जानी जाती है।

इस नई तकनीक की सहायता से वैज्ञानिक झीलों के उन विभिन्न पदार्थों की आयु का आकलन कर पाए हैं और वैज्ञानिकों के अनुसार इन पदार्थों की आयु 1.4 करोड़ वर्ष से 1.75 करोड़ वर्ष के करीब हैं। विलिनबर्ग कहते हैं कि इसका मतलब है कि यह पदार्थ उस समय की तुलना में काफी प्राचीन हैं जहाँ लोग यह सोच रहे हैं कि अन्टार्कटिका पर ग्लेशियर कम हो रहे हैं। इससे साबित होता है कि अंटार्कटिका में ग्लेशियरों के पिघलने की जो धारणाएं सामने आ रही हैं वह पूरी तरह सही नहीं हैं।

ooo

16

चंडीगढ़ स्थित रॉक गार्डन नेक चंद का अद्वितीय कारनामा

सीताराम गुप्ता

आज देश के महानगरों व बड़े–बड़े शहरों में ही नहीं कस्बों तक में बहुत सा कूड़ा–कचरा रोज निकलता है। इस कूड़े–कचरे का निपटान आज एक बहुत बड़ी समस्या बन गया है। यह कूड़े–कचरा प्रायः दो तरह का होता है। एक जैव–निम्नीकरणीय (बॉयोडिग्रेडेबल) और दूसरा अजैव–निम्नीकरणीय (नॉन बॉयोडिग्रेडेबल)। जैव–निम्नीकरणीय में वह कूड़ा–कचरा आता है जो सड़–गल कर मिट्‌टी में मिलने की क्षमता रखता है जैसे गले–सड़े फल–सब्जियाँ, फल–सब्जियों के छिलके व अन्य जीव–जंतुओं का मल–मूत्र, पेड़–पौधों व जीव–जंतुओं के अवशेष आदि।

ये सभी पदार्थ अपने मूल रूप में नहीं रहते और विघटित होकर नया रूप ले लेते हैं। इनके गलने–सड़ने व विघटित होने के दौरान कुछ गैसें भी उत्पन्न होती हैं जिनका संग्रह करके प्रयोग किया जा सकता है। अपशिष्ट पदार्थ का प्रयोग एक अच्छे उर्वरक के रूप में किया जा सकता है जो रासायनिक उर्वरकों के मुकाबले में सुरक्षित भी है। पशुओं के मल–मूत्र व गोबर से तो गोबर गैस संयंत्र लगाकर खाना पकाने व रोशनी करने के लिए गैस व बहुत उम्दा किस्म की खाद तैयार करना संभव है। कार्बनिक फसलों के उत्पादन में इसी खाद का प्रयोग किया जाता है।

दूसरी श्रेणी का कूड़ा–कचरा वह है जो सड़ता–गलता नहीं है अर्थात् प्राकृतिक रूप से स्वयं नष्ट न होने वाला कूड़ा–कचरा अजैव–निम्नीकरणीय (नॉन बॉयोडिग्रेडेबल) श्रेणी में आता है। इसका निपटारा करना आज भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में एक बहुत बड़ी चुनौती बन चुका है। नॉन बॉयोडिग्रेडेबल जैव अनिम्नीकरणीय श्रेणी के कूड़–कचरे में भी दो प्रकार की सामग्री रहती है। एक वह जिसका पुनः प्रयोग किया जा सकता है और एक वह जिसका दोबारा किसी भी प्रकार

का प्रयोग संभव ही नहीं है। तकनीकी दृष्टि से इसे हम दो भागों में बाट देते हैं। एक है पुनश्चक्रणीय (रीसाइक्लेबल) व दूसरा अपुनश्चक्रणीय (नॉन रीसाइक्लेबल)।

पुनश्चक्रणीय या पुनश्चक्रिय वे अपशिष्ट पदार्थ हैं जिनको उपचारित करके दोबारा उपयोग में लाया जा सकता है। इस्तेमाल शुदा रद्‌दी कागज, कपड़ा, लकड़ी, प्लास्टिक व लोहा, पीतल, ताँबा आदि धातुएँ ऐसे पदार्थ हैं जिनसे दोबारा उसी प्रकार की नई चीजें बनाना संभव है। काग्रज को गला कर व धातुओं को पिघलाकर दोबारा प्राप्त कागज व धातुओं से नई चीजें बनाना संभव है। अतः इस प्रकार के कूड़े–कचरे को मिट्‌टी में दब जाने अथवा बेकार पड़े रहने से रोकना और उसे स्क्रैप या रद्‌दी के रूप में बेच देना न केवल हमारे अपने व्यक्तिगत लाभ में है अपितु कचरा–प्रबंधन व पर्यावरण के हित में भी है।

रद्‌दी कागज यद्यपि जैव–निम्नीकरणीय पदार्थ है और अपेक्षाकृत जल्दी ही नष्ट होकर मिट्‌टी से एकाकार हो जाता है लेकिन इसको बड़ी सरलता व कम खर्च में पुनश्चक्रण करके पुनः उपयोग के योग्य बनाया जा सकता है अतः प्रयोग करने के बाद रद्‌दी बने कागज को नष्ट करना या बॉयोडिग्रेडेबल कूड़े में न फेंक कर उस रद्‌दी में बेच देना चाहिए ताकि उसे पुनश्चक्रण के लिए उपलब्ध कराया जा सके। हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती वह कचरा है जिसको पनुश्चक्रित नहीं किया जा सकता अथवा ऐसा करना सरल व व्यावहारिक नहीं होता। किचन व बाथ रूम में लगने वाली सीटें, टाइल्स व अन्य भवन निर्माण सामग्री का कचरा, चीनी मिट्‌टी व काँच के टूटे बर्तन, बोतल आदि ऐसी सामग्री है जिसे दोबारा प्रयोग करना असंभव है।

आज पूरे विश्व में इलैक्ट्रनिक कचरा बहुत बड़ी समस्या बनता जा रहा है। आज ऐसी चीजों के उत्पादन पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है जिनके खराब होने पर रिपेयर करना व उनको दोबारा प्रयोग करना व्यावहारिक नहीं रह गया है। अतः लोग पुरानी चीज़ें मरम्मत करवाने की बजाय उन्हें फेंक कर नई चीज़ें ख़रीदना सुविधाजनक समझते हैं। इस प्रकार की नकारा सामग्री के ढेर बढ़ते ही जा रहे हैं। इस प्रकार की चीज़ें जैव–निम्नीकरणीय कचरे में मिलकर उसके विघटन व प्रयोग में भी बाधा ही डालती हैं। अपुनश्चक्रणीय सामग्री का कोई व्यावसायिक उपयोग नहीं हो सकता। अतः पर्यावरण के लिए यह सबसे बड़ी बाधा है। आज इस प्रकार की नकारा सामग्री बहुत अधिक मात्रा में निकल रही हैं।

शहरों में ही इस प्रकार की सामग्री अधिक मात्रा में कचरे के रूप में निकल रही है और जगह की कमी होने के कारण इसके निपटान में सबसे बड़ी समस्या उत्पन्न हो रही है। कई लोग मिट्‌टी के साथ इस कचरे का इस्तेमाल स्थानों के भराव के लिए करते हैं जो कचरे के प्रबंधन का एक अच्छा तरीका है लेकिन अजैवनिम्नीकरणीय श्रेणी के अपुनश्चक्रीय कचरे को भराव में काम लेने की बजाय सड़कें आदि बनाने में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इससे सडकें बनाने में जितना पत्थर आम

तौर पर लगता है उसमें कमी आएगी। पत्थर का कम इस्तेमाल उसी अनुपात में पर्यावरण को प्रदूषित होने से भी रोकने में सहायक होगा।

अजैवनिम्नीकरणीय श्रेणी के अपुनश्चक्रीय कचरे का एक इस्तेमाल और भी है यानि–इस कचरे को कलाकृतियों में बदल देना। यदि अपुनश्चक्रीय कचरे का इस्तेमाल (लैंडस्केपिंग) अथवा खूबसूरत कलाकृतियों के निर्माण में किया जा सके तो इससे न केवल कचरे की समस्या हल हो जाएगी अपितु हमारे आसपास का सौंदर्य भी बढ़ जाएगा। चंडीगढ़ के नेकचंद ने कुछ ऐसा ही कर दिखाया है। उनकी कल्पना का ही साकार रूप है चंडीगढ़ का रॉक गार्डन जिसका निर्माण उन्होंने चंडीगढ़ के निर्माण के समय वहाँ से निकले किचन व बाथ रूम में लगने वाली सीटों, टाइलों व अन्य भवन निर्माण सामग्री व औद्योगिक कचरे जैसी सामग्री से प्रारंभ किया जिसका पुनर्प्रयोग असंभव है। नेक चंद, जिनका पूरा नाम नेक चंद सैनी है का जन्म 15 दिसंबर, सन् 1924 को वर्तमान पाकिस्तान के भांकरगढ़ नामक स्थान पर हुआ था। सन् 1947 में विभाजन के दौरान उनका परिवार चंडीगढ़ आकर बस गया था।

चंडीगढ़ आने के बाद नेक चंद को सन् 1951 में पीडब्ल्यूडी में रोड इंस्पेक्टर की नौकरी मिल गई। उस समय प्रसिद्ध वास्तुशिल्पी ली कार्बूजिए के निर्देशन में भारत के प्रथम नियोजित नगर चंडीगढ़ का निर्माण कार्य ज़ोरों पर था। उन्होंने देखा कि शहर भर में ऐसी सामग्री के ढेर लगे हैं जिसका कोई उपयोग नहीं था लेकिन युवा नेक चंद के अंदर के कलाकार ने उसमें भी कला की उपयोगिता देख ली। उन्होंने इस सामग्री को इकट्ठा करना शुरू कर दिया और इसी सामग्री से प्रारंभ हुआ विश्व के सबसे बड़े व अद्वितीय रॉक गार्डन के निर्माण का कार्य। इस अद्वितीय करनामे के लिए वर्ष 1984 में नेक चंद सैनी को पद्मश्री से भी सम्मानित किया गया। 90 वर्ष की आयु में अपने देहावसान तक वे इसे सजाने–सँवारने व इसका विस्तार करने में लगे रहे।

यद्यपि रॉक गार्डन के नाम से विख्यात इस स्कल्पचर गार्डन का नाम कुछ भ्रम उत्पन्न करता है क्योंकि इसमें एक कलाकार द्वारा निर्मित स्कल्पचर या मूर्तियाँ ही प्रदर्शित हैं। रॉक–गार्डन तो वास्तव में ऐसे गार्डन या बगीचे को कहा जा सकता है जो किसी पहाड़ी या ऊँची व पथरीली ज़मीन पर चट्टानों के ऊपर विकसित किया गया हो और जिसमें चट्टानों के ऊपर जगह–जगह उपजाऊ मिट्टी डालकर उसमें बड़े पेड लगाए गए हों तथा फूलों की क्यारियाँ बनाई गई हों। वास्तव में नेक चंद द्वारा निर्मित व विकसित रॉक गार्डन एक स्कल्पचर गार्डन या मूर्ति–शिल्प उद्यान है जिसमें भवन सामग्री व उद्योग–धंधों के कचरे का उपयोग किया गया है। इसमें कचरे के साथ–साथ सीमेन्ट, लोहे व अन्य सामग्री का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है।

पूरे परिसर का भ्रमण या अवलोकन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि इस स्कल्पचर गार्डन या मूर्ति–शिल्प उद्यान के प्रारंभिक शिल्प बनाने में अपशिष्ट पदार्थ का ही ज़्यादा इस्तेमाल किया गया

है। लेकिन बाद की कलाकृतियाँ व अन्य सरचनाएं (स्ट्रक्चर) या ढाँचे निर्मित करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में सीमेंट, लोहे व अन्य सामग्री का प्रयोग किया गया है और अपशिष्ट पदार्थ का प्रयोग नाम मात्र को ही किया गया है अथवा बिलकुल नहीं किया गया है। यदि आप अपशिष्ट पदार्थ के उपयोग द्वारा एक दीवार बनाते हैं और उसमें अपशिष्ट पदार्थ के रूप में बेकार पड़े एक ट्रक सेरेमिक प्लगों का इस्तेमाल करते हैं और इसके लिए दीवार बनाने के लिए भवन–निर्माण सामग्री के रूप में बीस ट्रक पत्थर, रोड़ी, रेत, सीमेंट, सरिया व अन्य सामग्री भी इस्तेमाल की जाती है तो ऐसे में अपशिष्ट पदार्थ के सदुपयोग के साथ–साथ जाने–अनजाने में नई उपयोगी सामग्री का दुरुपयोग होने की संभावना अधिक बनी रहती है।

रॉक गार्डन को देखने के लिए चण्डीगढ़ व आसपास से ही नहीं देश भर से प्रति दिन लगभग पाँच हज़ार लोग आते हैं। रॉक गार्डन के अंदर हमेंशा भीड़ बनी रहती है। मैंने देखा हैं कि रॉक गार्डन के अंदर के कुछ हिस्सों में जाने के लिए व वहाँ से वापस आने के लिए मात्र एक ही छोटा–सा दरवाज़ा बनाया गया है। यहाँ पर दोनों ओर कई बार बहुत भीड़ लग जाती है जिससे कभी भी कोई भयंकर हादसा हो सकता है। मेरे विचार से इस ओर ध्यान देना चाहिए। साथ ही प्रशासन को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि अपशिष्ट पदार्थ के इस्तेमाल के नाम पर अत्यधिक नई भवन निर्माण सामग्री का दुरुपयोग भी न हो।

ООО

लेखक परिचय

1. डॉ. उदय प्रताप शाद्री डॉ. बी. पी. ध्यानी श्री दीपक सिसोदिया	–	सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ, उ.प्र.
2. डॉ. दिनेश मंणि	–	प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, उ.प्र.
3. श्री विजय चितौरी	–	संपादक 'गाँव की नई आवाज' विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद, उ.प्र.
4. डॉ. विनय कुमार मिश्रा डॉ. तमिलरसी डॉ. के. के. शर्मा	–	लाख उत्पादन विभाग, भारतीय राल एवं गोंद अनुसंधान संस्थान, नामकुम रांची, झारखंड।
5. श्री जगनारायण	–	इशान स्टूडियो, दुकान नं. 20, श्री विश्वनाथ मंदिर काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.
6. डॉ. टी डो जोशी	–	जी. आई. सी. हरिपुरा हरसान डाक. हरिपुरा उघम सिंह नगर, उत्तराखंड।
7. डॉ. नवीन कुमार बोहरा	–	प्लॉट 389 गली 10, मिल्कमैन कॉलोनी पाल रोड, जोधपुर, राजस्थान
8. डॉ. सी. पी. सिंह	–	सहायक प्रोफेसर प्राणिविज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, चुडियाला, भगवानपुर हरिद्वार, उत्तराखंड।
9. श्री बी आर मौर्य	–	अध्यक्ष, कृषि रसाय एवं मृदाविज्ञान विभाग कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
10. डॉ. दीपक कोहली	–	5/104 विपुल खंड, गोमती नगर, लखनऊ।
11. डॉ. परशुराम शुक्ल	–	आइवरी फ्लैट नं. 20, प्लैटिनम प्लाजा, टी. टी. नगर, भोपाल (मध्य प्रदेश)–462003
12. विजन कुमार पांडेय	–	
13. सीताराम गुप्ता	–	ए. डी. 106/सी, पीतमपुरा, दिल्ली–110034

आयोग के प्रकाशन

बृहत पारिभाषित शब्द–संग्रह

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः विज्ञान खंड 1, 2 (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1994, पृ. 2058)	713	174.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः विज्ञान खंड 1, 2 (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1994, पृ. 2058)	684	150.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः मानविकी और सामाजिक खंड 1,2 (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1992, पृ. 1297)	706	292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी–अंग्रेजी) (1997, पृ. 650)	758	350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियर (हिंदी–अंग्रेजी) (1986, पृ. 240)	568	48.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः कृशि विज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1991, पृ. 223)	695	278.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः मुद्रण इंजीनियरी (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 104)	692	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः आयुर्विज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (2014, पृ. 693)	698	239.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः पशुचिकित्सा विज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 172)	718	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः विज्ञान (हिंदी–अंग्रेजी) (द्वितीय संस्करण 1997, पृ. 819)	757	236.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिकी) (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 1999, पृ. 566)	692	340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द–संग्रहः प्राणिविज्ञान (अंग्रेजी–हिंदी) (2003, पृ. 526)	885	311.00

अर्थशास्त्र

अर्थमिति परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1980, पृ. 245)	499	17.00
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1989, पृ. 232)	665	117.00
अर्थशास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 110)	843	185.00
अर्थशास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003, पृ. 144)	824	183.00
अर्थशास्त्र शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 60)	918	137.00
अर्थशास्त्र मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 139)	---	निःशुल्क

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 488)	805	450.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी–तमिल–हिंदी) (2002, पृ. 333)	812	279.00
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान) (अंग्रेजी–हिंदी) (2004, पृ. 407)	8471	338.00
आयुर्विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–ओडिया) (2005, पृ. 613)	--	निः शुल्क
आयुर्विज्ञान प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली (2009, पृ. 196)	907	273.00
आयुर्वेद परिभाषा कोष (संस्कृत–अंग्रेजी) (2010 पृ. 207)	925	260.00
आयुर्विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 462)	927	517.00
रोग निदान एवं विकृति शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2011, पृ. 419)	926	401.00
आयुर्विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (पृ. 462)	943	मुद्रणाधीन

इंजीनियरी

सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोष (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 112)	709	61.00
रासायनिक इंजीनियरी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 167)	739	51.00
विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 156)	773	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 135)	696	94.00
पर्यावरण इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 88)	--	निः शुल्क
यांत्रिक इंजीनियरी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 134)	--	निः शुल्क

इतिहास

इतिहास परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1982, पृ. 297)	548	20.50
इतिहास शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 300)	813	404.00

कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी

कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1992, पृ. 144)	702	102.00
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1995, पृ. 147)	714	57.00
कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 115)	---	निः शुल्क
दूरसंचार की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 191)	---	निः शुल्क
कंप्यूटर विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 121)	836	78.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2005, पृ. 393)	884	231.00
प्रसारण तकनीकी शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 148)	905	310.00

कला और संगीत

पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 85)	733	50.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2006, पृ. 254)	---	75.00
नाट्यषास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2006, पृ. 171)	889	75.00

कृषि

रेशम विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 85)	733	50.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 185)	---	75.00
कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 213)	751	75.00
मृदा विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 149)	756	77.00
वानिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2007, पृ. 437)	896	447.00
कृषि विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 127)	---	निःशुल्क

गणित

गणित शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 357)	728	143.00
गणित की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 135)	---	निःशुल्क
गणित परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 333)	822	203.00

संख्यिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) Out of Stock	––	18.00
गणित शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 105)	814	189.00
गणित शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 152)	852	335.00

गुणता नियंत्रण

गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी तथा हिंदी अंग्रेजी) (1996, पृ. 67)	729	38.00

गृहविज्ञान

गृह विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 144)	750	38.00
गृह विज्ञान शब्द–संग्रह शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 148)	––	निःशुलक

जीव विज्ञान

सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1977, पृ. 287)	497	24.00
पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1990, पृ. 161)	691	80.50
वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण) (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 204)	752	75.00
पादप आनुवंशिक परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 185)	753	75.00
सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 193)	755	45.00
कोषिका जैविकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 197)	742	62.00
पादप रोग विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 138)	768	75.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 266)	760	86.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 263)	785	125.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 321)	790	121.00
कोषिका तथा अणुजैविकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 316)	796	348.00
प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 540)	803	216.00
प्राणिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 204)	810	205.00
वनस्पतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 185)	842	208.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2004, पृ. 429)	870	381.00
प्राणिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी–बोडो) (2007, पृ. 184)	897	417.00
प्राणिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 247)	––	निःशुल्क

पर्यावरण विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 160)	––	निःशुल्क
वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 162)	––	निःशुल्क
जीवविज्ञान शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 294)	922	212.00
पर्यावरण विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2012, पृ. 348)	938	मुद्रणाधीन

दर्शनशास्त्र

भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड–1 (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 170)	775	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड–2 (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 230)	779	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड–3 (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 340)	780	136.00
दर्शन शास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 160)	821	61.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2003, पृ. 331)	850	198.00

पत्रकारिता

पत्रकारिता परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1990, पृ. 164)	681	87.00
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 184)	767	12.25

पुरात्व विज्ञान

पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 453)	711	509.00
पुरातत्व और वास्तुकला की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 68)	––	निःशुल्क
पुरातत्व विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	––	157.00
पुरातत्व विज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 78)	846	157.00
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2013, पृ. 271)	593	49.00
पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 220)	912	375.00

प्रशासन

प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 400)	840	390.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी–बोडो) (2007, पृ. 549)	899	720.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण 2008,पृ.511)	900	20.00
मूलभूत प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 202)	––	निःशुल्क
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (पूनर्मुद्रण 2010, पृ. 479)	935	20.00

प्रबंध विज्ञान

प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 191)	700	170.00

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 116)	794	247.00
मनोविज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2001, पृ. 86)	468	निःशुल्क
मनोविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 470)	820	108.00
मनोविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2013, पृ. 533)	941	मुद्रणाधीन

भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान परिभाषा कोश खंड–1 (अंग्रेजी–हिंदी) (1989, पृ. 212)	664	89.00
भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी तथा हिंदी–अंग्रेजी) (1992, पृ. 249)	707	113.00
भाषा विज्ञान परिभाषा कोश खंड–2 (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 295)	764	59.00

भूगोल

मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1990, पृ. 361)	663	231.00
भूगोल शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 369)	736	200.00
भूगोल मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 156)	—	निःशुल्क
भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) स्टॉक में नहीं	—	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) स्टॉक में नहीं	—	18.00
प्राकृतिक विपदा शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 202)	791	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 204)	801	131.00
भूगोल शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 426)	833	515.00
भूगोल शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	—	515.00

भूविज्ञान

पेट्रोलियम प्रौद्येगिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1992, पृ. 188)	733	173.00
शैलविज्ञान परिभाशा कोष (अंग्रेजी–हिंदी) (1993, पृ. 168)	708	153.00
भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 328)	727	88.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 284)	726	63.00
खनन एवं भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 128)	737	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी)	734	15.00

(1996, पृ. 48)		
भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1997, पृ. 141)	—	निःशुल्क
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1998, पृ. 60)	765	13.50
कोयला उद्योग की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1999, पृ. 64)	—	निःशुल्क
आर्थिक भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 70)	829	75.00
भूभौतिक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 60)	830	67.00
शैलविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 185)	729	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 174)	818	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 155)	817	115.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 69)	826	73.00
जीवाश्म विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 181)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	827	129.00
भूविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 284)	844	306.00

भौतिकी

तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1985, पृ. 76)	—	10.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 138)	717	45.00
भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 536)	741	119.00
भौतिकी परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (2002, पृ. 953)	804	700.00
भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 163)	806	203.00
अर्धचालक शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2006, पृ. 41)	890	140.00
इलेक्ट्रोनिकी शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2007, पृ. 98)	893	349.00
भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी–बोडो) (2007, पृ. 322)	898	652.00
भौतिकी शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2010, पृ. 102)	917	219.00
भौतिकी मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (पुनर्मुद्रण 2010)	—	निःशुल्क
प्लाज्मा भौतिकी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2011, पृ. 187)	930	1589.00

रसायन

उच्चतर रसायन परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 557)	611	17.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1988, पृ. 357)	661	55.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1988, पृ. 272)	—	25.00

धातुकर्म परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1996, पृ. 449)	731	278.00
रसायन शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003, पृ. 112)	823	137.00
रसायन शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2005, पृ. 918)	855	592.00
रसायन शिक्षार्थी शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 83)	920	84.00
रसायन मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2009, पृ. 140)	––	निः शुल्क
राजनीति विज्ञान		
राजनीति विज्ञान परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1991, पृ. 356)	697	343.00
राजनीतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 121)	815	186.00
राजनीतिविज्ञान शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 127)	847	211.00
रातनीति विज्ञान मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2003, पृ. 67)	––	निः शुल्क
रक्षा		
समेकित रक्षा शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1993, पृ. 343)	699	284.00
लोक प्रशासन		
लोक प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1995, पृ. 98)	721	52.00
वाणिज्य		
वाणिज्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 173)	498	24.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (1992, पृ. 172)	698	259.00
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2000, पृ. 185)	786	79.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 188)	811	162.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 169)	835	194.00
वाणिज्य मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2013, पृ. 134)	––	निःशुल्क
शिक्षा		
शिक्षा परिभाषा कोश खंड–1 (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 197)	493	13.50
शिक्षा परिभाषा कोश खंड–2 (अंग्रेजी–हिंदी) (1989, पृ. 205)	680	99.00
शिक्षा शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2002, पृ. 151)	809	137.00
शिक्षा शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2002, पृ. 82)	834	97.00
समाज शास्त्र		
समाज कार्य परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1978, पृ. 183)	496	16.25
समाज शास्त्र परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1987, पृ. 199)	570	71.40

समाज शास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–ओडिया) (2003)	—	118.00
समाज शास्त्र शब्द–संग्रह (अंग्रेजी–बोडो) (2003, पृ. 74)	841	118.00
अन्य		
अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश (अंग्रेजी–हिंदी) (1994, पृ. 295)	715	344.00
संसदीय कार्य शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी) (2008, पृ. 87)	901	130.00

संदर्भ–ग्रंथ

शीर्षक	पी.ई.डी.नं.	मूल्य
कृषिजन्य दुर्घटनाएं (1983, पृ. 212)		25.00
विश्व के प्रमुख धर्म (1984, पृ. 293)	571	118.00
विकास मनोविज्ञान भाग–1 Out of stock		40.00
विकास मनोविज्ञान भाग–2 Out of stock		30.00
बाल मनोविकास (1985, पृ. 252)	572	58.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन (1986, पृ. 193)	587	31.00
सैन्य विज्ञान पाठ संग्रह (1987, पृ. 282)	601	100.00
द्रवचालित मशीन (1987, पृ. 579)	584	66.50
सूक्ष्म तरंग इंजीनियरी (1989, पृ. 335)	679	470.00
लोहीय तथा अलोहीय धातु (1989, पृ. 178)	666	68.00
लैटर प्रेस मुद्रण (1990, पृ. 407)	690	270.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक (1990, पृ. 696)	685	433.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी (1995, पृ. 452)	720	995.00
ऐतिहासिक नगर (1996, पृ. 145)	723	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर (1996, पृ. 121)	724	109.00
समुद्री यात्राएँ (1996, पृ. 90)	725	79.00
वैज्ञानिक शब्दावली : अनुवाद एवं मौलिक लेखन (1996, पृ. 274)	730	34.00
विश्व दर्शन (1997, पृ. 115)	759	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन (1998, पृ. 53)	776	115.00
कोयला : एक परिचय (1998, पृ. 122)	766	23.25
रत्न विज्ञान : एक परिचय (1999, पृ. 169)	762	40.00
पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन (1998, पृ. 154)	766	23.25
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन (1998, पृ. 65)	762	40.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एव स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन (1999, पृ. 94)	783	68.00
भारत में प्याज एवं लहसन की खेती (1999, पृ. 137)	782	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग (1999, पृ. 208)	781	60.00

मृदा–उर्वरता (2000, पृ. 537)	798	410.00
ऊर्जा–संसाधन और संरक्षण (2000, पृ. 136)	798	105.00
पशुओं के कवकीय रोग, उनका उपचार एवं नियंत्रण (2000, पृ. 179)	789	93.00
पराज्यामितीय फलन (2000, पृ. 101)	793	90.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण (2001, पृ. 671)	799	343.00
भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन (2001, पृ. 485)	792	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन (2001, पृ. 458)	795	559.00
सामाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी (2001, पृ. 280)	796	54.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतकः तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन (2002, पृ. 189)	806	153.00
स्वतंत्रता–पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन (2002, पृ. 157)	805	176.00
भारतीय कृषि का विकास (2002, पृ. 206)	831	155.00
कोयलाः एक परिचय (परिवर्धित संस्करण 2002, पृ. 157)		
भविष्य की आशाः हिंदी महासागर (2003, पृ. 219)	856	154.00
इस्पात परिचय (2003, पृ. 85)	853	146.00
जैव–प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास (2003, पृ. 82)	848	134.00
पृथ्वी : उद्‌भव और विकास (2003, पृ. 150)	849	86.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (2003, पृ. 87)	854	90.00
प्राकृतिक खेती (2004, पृ. 149)	867	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रकारिता : कल, आज और कल (2004, पृ. 172)	869	112.00
मानसून पनवः भारतीय जलवायु का आधार (2004, पृ. 85)	870	112.00
हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन (2004, पृ. 219)	868	280.00
विश्व में प्रमुख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणाः एक तुलनात्मक अध्ययन (2005, पृ. 465)	883	490.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन (2006, पृ. 253)	887	214.00
मृदा एवं पादप पोषण (2006, पृ. 331)	885	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियंत्रिकी (2006, पृ. 334)	886	398.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन (2006, पृ. 263)	891	367.00

पृथ्वी से पुरातत्व (Out of stock)		40.00
भारत के सात आश्चर्य (2009, पृ. 285)	900	335.00
पादप सुरक्षा के विविध आयाम (2010, पृ. 285)	916	360.00
पादप सुरक्षा एवं पौधशाला प्रबंधन (2010, पृ 231)	915	403.00
खनि आयोजन के सिद्धांत और अनुप्रयोग (पृ. 362)	940	मुद्रणाधीन
मृदा संरक्षण एवं प्रबंधन (पृ. 261)	943	मुद्रणाधीन

ग्राहक फार्म

सेवा में :

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिम खंड–7 रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क .... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्रफ्ट सं. .... दिनांक .... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम ....

पूरा पता ....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्कः	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्रफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग" के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी

अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण–पत्र भी संलग्न करें:

विद्यार्थी–ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी–श्रीमती–श्री .... इस विद्यालय–महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ....विभाग का छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)

(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।
2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।
3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात् ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।
4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉवर्डिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।
5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन–व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।
6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।
7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग–अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।
8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।
9. पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।
10. सामान्यतः बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में अन्य पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र.सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, (शहरी मामले व रोंजगार मंत्रालय) सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली – 110001
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता–700001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई – 400020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली –110001
6.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली – 110003
7.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली – 110001

MGIPMRND—270 –22-06-2018.

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

विशेषांक 99 पी.सी.एस.टी.टी. (10–12) 2016
1000

Mobile App of Administrative Terms Glossary is now available in Google Play Store.

Step-1: Search CSTT • Step-2: Download • Step-3: Open to use

वैतश आयोग द्वारा प्रकाशित शब्दावलियाँ, परिभाषा-कोश मोबाईल ऐप तथा ई-पुस्तक के रूप में उपलब्ध होंगें।

प्रोफेसर अवनीश कुमार
अध्यक्ष

Glossaries and Definitional Dictionaries published by CSTT shall now be available in mobile apps and e-books format.

Professor Avanish Kumar
Chairman

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066.
फोन नं. 011-26105211 • वेबसाइट : www.cstt.nic.in
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
West Block No. 7, Ramakrishnapuram, New Delhi - 110066.
Phone: 011-26105211 • Website: www.cstt.nic.in

मुद्रण निदेशालय, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली–110002, द्वारा मुद्रित एवं
प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054 द्वारा प्रकाशित, 2018